प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय,
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

अप्रैल, १९३८ : २०००
मई १९३९ : २०००

मूल्य
आठ आना

मुद्रक—
श्रीपतराय,
सरस्वती प्रेस,
बनारस कैण्ट।

प्रकाशक की ओर से

हमें इस बात की बहुत खुशी है कि 'मण्डल' से प्रकाशित होनेवाली नई 'लोक साहित्य माला' की शुरुआत हम स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ की इस पुस्तक से कर रहे हैं।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्बा इतिहास है। सन् १९२९-३० के दिनों में स्व० गौड़जी से 'मण्डल' ने 'ग्राम-सुधार और संगठन' के विषय पर एक ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१ में गौड़जी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के संचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ बहुत बड़ा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौड़जी इसको कुछ छोटा करदें और इसे देखने के लिए गुजरात विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेलकर और महामात्र श्री नरहरि परीख के देखने को भेजदें। इसके मुताबिक गौड़जी ने इस ग्रंथ को काका सा० को, जबकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-संस्कार के निमित्त काशी गये थे, दे दिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न-देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का क़ब्ज़ा होगया और काका सा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ में जब विद्यापीठ पर से प्रतिबंध उठा तब 'मण्डल' के मंत्री ने उस ग्रन्थ के बारे में वहाँ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कहीं खोगया है। इतने बड़े और इतनी मेहनत से, लिखे गये ग्रंथ के खो जाने से हम सबको बड़ा दुःख हुआ।

लेकिन सन् १९३४ में जब मण्डल दिल्ली आ चुका था, तब उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री बलवीरसिंह हमें मिले और गौड़जी का

इस पुस्तक के बारे में पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नहीं? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होंने कहा कि "इसकी एक नक़ल तो मेरे पास है, अगर आप चाहें तो मैं आपको दे दूँ।" हमें यह सुन आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होंने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार में काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होंने पढ़ा। और पढ़ने पर उनको वह इतनी अच्छी लगी कि रात-रात भर जागकर चुपके से उसकी नक़ल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था और न गौड़जी को ही।

श्री बलबीरसिंहजी ने *ग्रन्थ* मण्डल को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौड़जी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादें और अद्यवत् (Up to date) बनादें तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रंथों के लेखन आदि में इतने व्यस्त रहे कि इसका संपादन न कर सके और अंत में पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रंथ फिर गौड़जी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफ़त श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होंने इसे शुरू से अंत तक पढ़ा और उन्होंने मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फल स्वरूप इस ग्रन्थ का यह पहला खण्ड आपके हाथ में है। और दूसरा खण्ड 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्यमाला' (बड़ी माला) से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इस प्रकार श्री बलबीरसिंहजी के परिश्रम से गौड़जी का यह ग्रन्थ बच गया इसके लिए वह हमारे और पाठकों के बहुत धन्यवाद के पात्र हैं।

यह इसका सारा इतिहास है। 'मण्डल' ने इस ग्रंथ पर स्व० गौड़जी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रंथ ही इतना

उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत ज़रूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक प्रचार होगा उतनी ही स्व० गौड़जी के परिवार वालों को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है, प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक इसे अवश्य ख़रीदेगा और लाभ उठावेगा।

इस माला में इसी आकार-प्रकार, छपाई और मूल्य वाला सर्वसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और चरित्र को ऊँचा उठानेवाला राष्ट्रीय साहित्य निकलेगा। इसकी पूरी योजना इस पुस्तक के अन्त में दी गई है। हम इस माला को सब तरह से सम्पूर्ण और उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं। लेकिन यह सब हिन्दी भाषा के उदार पाठकों, लेखकों और भारत के लोकनेताओं के प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन पर निर्भर करता है। आशा है, पाठकवर्ग ज्यादा-से-ज्यादा तादाद में इसको ख़रीदकर और इसका प्रचार करके तथा लेखकवर्ग इसके लिए पुस्तकें लिखकर और लोकनेता इस दिशा में हमारा मार्ग-दर्शन करके इस काम को पूर्ण करने में हमारी सहायता करने की कृपा करेंगे।

आज इसका दूसरा संस्करण पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हमें हर्ष है और हम भविष्य में उनसे और अधिक सहयोग की आकांक्षा रखते हैं।

—मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषतः भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में मुख्य धारणाओं के साथ अपने सभी विचारों को सुसंगत करने की कोशिश करते हैं। उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहाँ का इतिहास भी विकासवाद के अनुरूप होना चाहिए। दूसरी धारणा यह है कि मानव सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिन्दू बताते हैं। तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे। पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है। उसके आधार पर इतिहास की कोई स्थिर इमारत सभी देशों और कालों के लिए सुभीते से नहीं खड़ी की जा सकती। दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास बरसों के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढ़ाता आया है, अतः इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है। तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओं के आधार पर है जिन पर भी विद्वानों का मतभेद है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता। सुतरां मैं तीसरी धारणा को निराधार मानता हूँ।

पाठकों के सामने भारतीय गाँवों के इतिहास के जो ये पृष्ठ मैं रख रहा हूँ, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनों धारणाओं की जानबूझ कर उपेक्षा की है। साधारण पाठक भी इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहेंगे कि सतयुग दो हजार बरस पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले। या यह कि सतयुग में यदि वह सृष्टिकाल के पास था, मनुष्य को कपड़े बनाने की कला आती

चाहिए या नहीं? अथवा यह कि यहाँ के गाँवों को आर्यों ने बाहर से आकर बसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदों से अधिक पुराना संसार में कोई साहित्य नहीं है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार पर प्राचीनतम गाँवों का इतिहास अवलम्बित है, फिर चाहे उसे पाँच हज़ार बरस हुए हों, चाहे पाँच लाख। हमारे गाँवों की जब से आबादी है हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते हैं। फिर चाहे वे गाँव इस भूतल पर किसी देश के क्यों न हों वे गाँव हमारे ही थे किसी और जाति के नहीं।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहाँतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्त्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योंकि वर्त्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है। साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास बड़ा सहायक होता है। आज हमारे गाँवों के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खड़ा है। इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिंहावलोकन करना आवश्यक है। ग्राम संगठन की समस्या देश के सामने है। उसकी पूर्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है। इस कहानी की हमारे ग्राम संगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैंने, इस पोथी के संकलन में, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूँगा।

बड़ी पियरी, काशी

रामदास गौड़

विषय-सूची

हमारे गाँवों की कहानी

हमारे

गाँवों की कहानी

: १ :

सतजुगी गाँव

१. गाँव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिका ॥

—मार्कण्डेय पुराण ।

गाँव किसे कहते हैं ? आज भारत देश में कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेंगे। बड़े से बड़े शहर में रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नहीं है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गाँव की ओर जरूर जाता है। इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गाँव के लिए पूछे कि किसे कहते हैं। तो भी भारी-भारी पण्डितों ने यह बताया है कि गाँव किसे कहते हैं। गाँव उसी बस्ती का नाम है जिसमें मेहनत मजूरी करनेवाले, और सब जरूरत की वस्तुओं से रँजे-पुन्जे खेतिहर रहते हों और जिसके चारों ओर खेती करने के लायक़ धरती हो। ऊपर लिखे श्लोक के लिखनेवाले ने गाँव के रूप का एक नक़्शा खींचा है। भारत खेतों का देश है। अन्न और कपड़ा इन्हीं खेतों से मिलते हैं। संसार की अच्छी से अच्छी चीजें, भोग-विलास की सामग्री तक लगभग सभी इन्हीं खेतों की उपज है। इन्हीं खेतों की बदौलत किसान सुखी और निश्चिन्त रह सकता है। इन खेतों

पर मेहनत मजूरी खूब जी लगाकर की जाती है, तभी सब मनचाहा सामान मिल सकता है। इसलिए गाँव में मजूर और किसान इन दोनों का होना ज़रूरी है। मजूर जब अपने खेत में काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गाँव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान हैं। एक कुम्हार जब औरों को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते हैं, तब सब के सब किसान हैं। गाँव में आपस के और नाते भी होते हैं, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमें बराबर है। आदमी सभी बराबर हैं। सब अपना-अपना काम करते हैं।

आजकल भी हम गाँवों में देखते हैं तो थोड़ी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितों ने जो गाँव का नक़शा खींचा है वह बिलकुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गाँवों में जाकर देखते हैं तो मजूरों और किसानों को पाते हैं। हाँ, उन्हें सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पड़ते हैं। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी हैं। आधे से अधिक ऐसे हैं जिन्हें दिन-रात में एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते हैं, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एड़ी तक बहाते हैं और काम के पीछे मर मिटते हैं; पर औरों के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते हैं पर उनकी सेवा करते हैं जो उन्हें लात मारते हैं; उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर

दरिद्रता—जिसको देखकर रोयें खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—, उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना में इन गाँवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छाहीं कल-पुरजों की सभ्यता से जिनकी आँखें चौंधियाँ गई हैं, पच्छाँह की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल कारखाने खुलने चाहिएँ। क्या इनके विचार ठीक हैं? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमें प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पण्डितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है।[1] आर्य किसान को कहते हैं। इस बात की गवाही वेदों से भी

१. रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेज़ी के "प्राचीन भारत में सभ्यता का इतिहास", पृष्ठ ३५।

मिलती है।[1] राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म, अकाल पड़ जाने पर बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे पड़े हैं। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम हैं। खेती गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता। और खेती में उपजा हुआ अन्न जब गाँव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गाँव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों में 'विश्' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसीसे वैश्य बना। इसलिए वैश्य भी किसान ही को कहते हैं।[2]

१. यवंवृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

ऋक् १।११७।२१

हे अश्विनी कुमारो! हल से जुते खेत में यवादि धान्य बुवाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर से (वज्र से) मारते हुए तुम दोनों ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है।

ओमासश्चर्षणी[1]धृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥१॥

ऋक् १।३।७

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः[1]। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥२॥

ऋक् १।४।६

(१) चर्षणि, (२) कृष्टि—ये दोनों शब्द मनुष्य वाचक हैं। हे देवताओ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो॥१॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! तेरी कृपा से शत्रु भी हमें अच्छा बतलावें, फिर हम इन्द्र से प्राप्त सुख में रहें॥२॥

२ पुरुष सूक्त के सिवाय संहिताओं में और कहीं 'वैश्य' शब्द नहीं

हमारी दुनिया सतजुग से ही शुरू हुई है और वोली का शुरू भी सतजुग में ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहज में ही समझ सकते हैं कि सतजुग में खेती का काम बहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफ़ेसर सन्तोषकुमार दास अपनी अंग्रेज़ी की "प्राचीन भारत का साम्पत्तिक इतिहास" नाम की पुस्तक में पृष्ठ ९ पर लिखते हैं कि "धरती के चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जंगल। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था।.........वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे गऊ या खेतों के हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतने वालों में बँट जाता था।" लोग गाँव में अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतों के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। वाप मर जाता था तब बेटों में जायदाद बंटती थी। गोचर भूमि और जंगल पर सबका अधिकार था। वेदों में इन अधिकारों के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी में यह भी लिखा है कि "प्रोफ़ेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते हैं कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करने के लिए जो मन्त्र कहा जाता है उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदऋतु में बाढ़ आने पर इन मिट्टी के

आया। 'विश्' शब्द का बराबर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकांश समुदाय का नाम होगा। यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि देश के भरण-पोषण के लिए सबसे अधिक संख्या किसानों ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की आवश्यकता-नुसार अत्यन्त कम शूद्रों अर्थात् मजूरों की संख्या लगभग किसानों अथवा वैश्यों के बराबर होगी।

पुरों में किसान लोग शरण लेते थे। यह 'पुर' एक प्रकार के बाँध का नाम है।"[१] जो हो; तो इसमें सन्देह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी तो बहुत कम रहे होंगे। गाँवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूँ, धान, मूंग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत से होती थी।[२] लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड़, बकरी रखते थे और चराने को ले जाया करते थे। समय-समय पर खेती के सम्बन्ध में नई उपज पर, फ़सल खड़ी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बड़ी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त में उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान माँगता है वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही

१. शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे॥

ऋग्वेद मं० ४ सू० म० २०

तथा प्रो० सन्तोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इन्द्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ 'पुरों' को दिया।

२. युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु॥

ऋग्वेद मं० ८ सू० २२ म० ४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनों के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक! कुमारो! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ़ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार में लोग फँसे नहीं रहते थे। वेदों में सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसंगों में वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिलकुल जाहिर है कि किसान लोगों में कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय में ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास में लगे रहते थे।[1] ये ऊन का रंग उड़ा देते थे और कपड़ों को सुन्दर-सुन्दर

१. नाहं तन्तुं विजानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥
मं० ६। सू० ९। म० २

न मैं तन्तु को और न ओतु को ही जानता हूँ और न इन दोनों से बनने वाले कपड़े को जानता हूँ। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञातव्य बातों को सूर्य से नीचे लोक में रहने वाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नहीं। यदि कोई इन बातों का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर से ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥
मं० ६। सू० ९। म० ३

इस प्रकार तन्तु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है परन्तु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है—और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपों से द्युलोक और भूलोकादि में स्थित है।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

रंगों में रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियाँ काम में लाते थे; शहद इकट्ठा करते थे; शक्कर बनाते थे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उनके यहाँ तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खंडसाल थीं, करघे थे, चरखे थे। खेत की सिंचाई के लिए कुएँ थे जिनसे रहँट से पानी निकाला जाता था। नाले और नहरों से भी सिंचाई होती थी। कभी-कभी सूखा भी पड़ जाता था और लोग अकाल का

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी १ । १०५ । ८

मुझे कूप की भीतें तकलीफ देती हैं जिस प्रकार सौतें एक पति को दुःख देती हैं तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ आकर के तन्तु काट जाते हैं, जिनपर माँड लगा रहता है। हे इन्द्र ! तेरे स्तोता मुझको आधियाँ बहुत ही सताती हैं।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम्॥

५ । २९ । १५

हे बलवत्तर ! इन्द्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की हैं जिस प्रकार अच्छे अच्छे वस्त्रों से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हें स्वीकार कर हमें धनवान् बनाइए।

उच्चथ्ये वपुषि यः स्वराडुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत्॥ ८ । ४६ । २८

इस स्तुत्य शरीर में जो स्वाराट् (अन्न) विद्यमान है वह अश्व गधे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है वह अन्न हमें दे। और वह अन्न सामने ढेरी रूप में विद्यमान है।

भी मुक़ाबला करते थे। उनके वर्तन ताँबे, पीतल, फूल कांसे के होते थे। अमीरों के घर सोने और चाँदी के वर्तन बरते जाते थे। वे गाड़ी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे। अच्छे-अच्छे कच्चे, पक्के मकान बनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तियाँ बनाते

गावो न यूथमुपयंन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः।

८। ४६। ३७

मुझे गौएँ तथा वधिये बैल प्राप्त हो रहे हैं।

अधयच्चार थे गणे शतमुष्ट्रौं अचिक्रदत्।

अध श्वित्रेषु विंशतिंशता।

८। ४६। २१

जंगलों में झुण्ड रूप में चरने वाले ऊँट हमें प्राप्त हों। और श्वेत-रंग वाली गौओं के सौ बीसे प्राप्त हों। (इस प्रकार के इस मण्डल में बहुत मन्त्र हैं)।

आर्धाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च।

वासो वायोऽवीना मावासांसि मर्मृजत्॥

ऋक् १०। २६। ६

अपने लिए पाली गई बकरी और बकरों का पालक सूर्य हमारे लिए भेड़ों की ऊन के बने हुए वस्त्र (जिनको धोबियों ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।

स्वादु क्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥

ऋक् १। ३१। १५

हे अग्ने! तू प्रयतदक्षिण पुरुष को उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, बाने, तुरी, वेमा आदि से बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ

थे, बच्चों को पढ़ाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन बना कर खाते थे। इन सब बातों से यह ज़ाहिर होता है कि गाँव में किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था। क्षत्रिय रक्षा

को करता है वह स्वर्ग की उपमा होता है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिकों को सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयह्व्योऽवनीर्गोष्ववर्ा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतंत्राः॥

ऋक् १०।९९।४

वह घोड़ा (इन्दे) मेघों में जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पैर के जहाँ चलते हैं वहाँ, जहाँ रथ से नहीं चलते वहाँ तथा नदियों में भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवतॉं इव।
क्रतुँ नः सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे॥

ऋक् १०।२५।४

हे सोम! हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियों के समान इकट्ठी ही चलती हैं जिस प्रकार वे कूप में इकट्ठी जाती हैं। तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है।

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता॥

ऋक् १०।९३।१३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति बार बार हिरण्यालंकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही है। जिस प्रकार पुरुषों की सेना संग्राम में और

करता था और खेती भी करता था। बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था। मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी। कुम्हार, तेली, भड़भूँजे, चमार, कीरी, ठठेरा, लुहार, बढ़ई, धीवर, ग्वाले,

---

रहट की घटिका यन्त्रमाला कूप में देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है।

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोश सिञ्चता नृपाणम् ॥

१० । १०१ । ७

हे ऋत्विजो ! तुम घोड़ों को घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताज़ा रक्खो और फिर खेत वगैरा बोओ। और चयन नामक रथ को स्वास्तिवाहक बनाओ। बैलों के पीने के लिए चौबच्चे लकड़ी, पत्थर आदि के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज़ भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सकें।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥

ऋक् १० । १०१ । ४

मेधावी पुरुष हल जोड़ (त) ते हैं, जूओं को अलग-अलग बनाते हैं, जिसमें हमें सुख प्राप्त हो।

इस प्रकार इस मण्डल में तथा अन्य मण्डलों में भी इस प्रकार ऋग्वेद में वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यत्ते वासः परिधानं यां नीविं कृणुषे त्वम्।
शिवं ते तन्वे तत् कृण्मः संस्पर्शेऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥

अथर्व० ८ । २ । १६

हे बालक ! तेरा जो ओढ़ने व पहिनने का वस्त्र है वह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम बनाते हैं। इत्यादि।

इसी प्रकार १० । १०१ । ३ में ऋग्वेद में सातों अनाजों के बोने की भी वेद में आज्ञा मिलती है। इत्यादि ॥

धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज़ दर्ज़ी, माली आदि सभी कारबार के लोग गाँवों में रहते थे और अपने कारोबार के साथ-साथ खेती ज़रूर करते थे। श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थीं। ये जातियाँ धीरे-धीरे वंशानुगत हो गईं।

सतजुग में गाँवों की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरते थे। उस समय की चर्चा में भुक्खड़ों का और दुर्भिक्ष पीड़ितों का वर्णन नहीं है। अधिकांश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरों का हक़ छीनने की चाल कम थी। धर्म्म की बुद्धि अधिक थी। हरेक गाँव अपने लिए स्वतंत्र था। पाप बुद्धि कम होने से चोर डाकू या और सत्वापहारियों का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

३. राजकर और लगान की रीति

सतयुग के आरम्भ में बहुत काल तक किसी ऊपरी हुकूमत या शासन की जरूरत न पड़ी होगी, क्योंकि प्रजा में अपने-अपने कर्तव्य पूरे करने का भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्राय: तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यों की बस्ती घनी न थी, सारी धरती पड़ी थी। इसलिए लोग जरूरत से ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा कि इन्द्रियों के सुख की सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयों के सतजुग में भी आदम ने जबतक ज्ञान के पेड़ का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था, कि

मैं नंगा हूँ, और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इञ्जीर के पेड़ को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बाग में ज्ञान और जीवन के पेड़ थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी में आकर उससे यह भारी भूल होगई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।[१] उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास सम्पत्ति कम है, और पड़ौसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पड़ौसी से ज्यादा सम्पत्ति हो जाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज़ हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा स्वार्थ और पाप ने अपनी जड़ जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग में बाधा डालता।

"राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।"

यही नियम चलने लगा "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी में बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने लगती हैं। इस तरह बलवानों और निर्बलों का झगड़ा जब समाज में उथल-पुथल मचाने

१. ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्। यजु० ४० । १ ।

यह सब कुछ, जो कुछ कि चलायमान संसार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सब में व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हें मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

लगा, उस समय जिन लोगों में थोड़ी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज की इस गड़बड़ को मिटाने के लिए लड़नेवालों को समझाने-बुझाने लगे, और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आवे। इसमें वे सफल न हुए। भले लोगों ने इन पशु-बल वालों से बचने के लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर हैं, लवार हैं, सब पर ज़बर्दस्ती किया करते हैं, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते हैं, उन सबका हम लोग त्याग करेंगे। असहयोग इस तरह सतजुग में ही आरम्भ हुआ था।

जान पड़ता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो ज़बर्दस्त थे, किसी का दबाव नहीं मानते थे, व्यभिचारी थे, और दूसरों का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ़ गई थी[1] कि उनसे थोड़ी गिनतीवाले धर्मात्माओं के

---

१. अराजकाः प्रजाः पूर्वं, विनेशुरिति नः श्रुतम्।

—महाभारत, शान्तिपर्व्व।

वाक्शूरो दंडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः
यः परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति।
तास्तथा समयं कृत्वा समये नावतस्थिरे॥

म० भा० शा० प०

बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम्।
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।
तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्त्तॄनेनो गमिष्यति।
पशूनामधिपंचाशद्धिरण्यस्य तथैव च॥
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम्।
यं च धर्मं चरिष्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः॥
चतुर्थं त्वस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति।

त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छों ने मिलकर प्रजापति से शिकायत की। इस पर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की, जो क्रम से बहुत छोटे रूप में धर्म-भीरू मनुष्यों को मिला। इसका नाम दण्ड-नीति रक्खा गया। परन्तु इतने से काम न चला। दण्ड कौन दे? तब शासन करनेवाले की ज़रूरत हुई। लाचार हो लोग प्रजापति के पास गये; परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभी न थे। उन्होंने लोगों को मनु के पास भेजा। मनु बोले, राजा का काम बड़ा कठिन है, और पाप से भरा है। जो लोग झूठ के व्यवहार में लगे रहते हैं उन पर, और खासकर झूठे मनुष्यों पर, शासन करने से मैं डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई। उसने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हें ये वचन दिये—"आप पाप के लिए न डरिए। पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोप बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेंगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे, उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है।"

जान पड़ता है भगवान् मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोबस्त किया उसका आधार यही इक़रारनामा था। बन्दोबस्त करने के बदले और रक्षा कराई के वेतन में मनुष्यों को भूमि पर कर देना पड़ता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगों ने जंगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी सम्पत्ति

तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावितः।
पाहस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः।

होगई। बहुतों के पास जरूरत से ज्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमें धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जाँय। बहुतों के पास इतने खेत थे, कि वे सबको काम में नहीं ला सकते थे! इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पड़ा। राजा का महसूल जमीन के मालिक को देना पड़ता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था, वह इतना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के बाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान में दे डालना पड़ता था। कुछ भी हो, धरती राजा की नहीं थी। प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर उसे मिलता था वह राजा की तनख्वाह थी। शुक्र नीति में भी ऐसा लिखा है।

जिन राजाओं ने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रों पर अन्याय करने लगे तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तव से विनाश होगया। राजा वेन अपनी जबर्दस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया। प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने से पृथु का राज ऐसा मशहूर होगया कि उसीसे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड़ गया।

दण्ड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापति की ही जगह था। इसलिए संसार की प्रजा उसकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया, क्योंकि वह धरती और किसा

की रक्षा करता था। उसे तनख्वाह में राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजा की धरोहर समझता था और रक्षा के काम में लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंश की जरूरत होती थी। जमींदारी, रैयतवारी, लगान, राजा, राज-प्रबन्ध सब कुछ तभी से चल पड़े।

: २ :

सतज़ुग के बाद के गाँव

१. त्रेता और द्वापर

सतज़ुग के बाद के समय को विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते हैं। उसीको प्रायः पच्छाहीं रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण-युग कहते हैं। इस युग में भी जितनी बातें सतयुग में होती थीं उतनी सभी बातें पाई जाती हैं। युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदों को भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो गया। परन्तु लोग धातुओं का निकालना न भूले, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहले की तरह जारी था। भगवान् रामचन्द्रजी के राज में, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हज़ार बरस तक का बतलाते हैं, पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नहीं पड़ा था और जब एक ब्राह्मण का लड़का जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान् रामचन्द्रजी के दरबार में लाया और राजसिंहासन से विचार कराना चाहा कि लड़का क्यों मरा। क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचते हैं, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है। और यह बात तो बिलकुल साफ़ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही

काम था. तब प्रजा में रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि रामराज्य में प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतजुग की तरह अब भी खेती में बहुत बड़ा और भारी हल काम में आता था। उसका फाल बहुत तेज़ और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल में चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे। खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिंचाई होती थी उसी तरह खाद भी देना ज़रूरी था, और भाँति-भाँति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्रायः सभी उस समय भी होते थे।[१]

१. लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद् वपतु गामविं प्रस्थावद्रथवाहनं पीवरीं च प्रफर्व्यम्॥
अथर्व ३।१७।३

तेज़ फालवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अन्नों का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड़ आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे।

शुनासीरे ह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेने मामुपसिञ्चतम्॥ अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो! जो मेरे खेत में पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश में जल है उससे इस खेत को सींचो।

"चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा औदुम्बर्यौ उपमन्थिन्यौ। दशग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति—व्रीहियवाः

रामायण से पता चलता है कि खेती बड़ी भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विषय खेती और व्यापार था। श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से पूछते हैं कि "तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा बर्ताव रखते हो या नहीं।" खेती इतने ज़ोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गाँवों के वर्णनों में यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।[1]

हर गांव में ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले जिनकी जीवन में सबसे ज्यादा ज़रूरत पड़ती है, जैसे नाई, धोबी, दर्ज़ी, कहार, चमार, बढ़ई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गड़रिये आदि होते थे। गाँव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पञ्चायतों से हर गाँव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था। रक्षा के

तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। वृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा. ३। म. १३.

"दस तरह के ग्रामीण अन्न होते हैं—धान, (चावल) जौ, तिल, उड़द, अणु, (सांवा-कगनी), मसूर, खल्व, कुलथा, गेहूँ।"

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियंगवश्च मे अणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

१. अयोध्याकांड सर्ग ६८; बालकांड सर्ग ५; अयोध्याकांड, ३।१४; अयोध्याकांड सर्ग ६२।

लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था, और उसके बदले राजा बाहरी वैरियों से गाँवों की रक्षा करता था, फिर चाहे वह वैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोग, दोष अकाश, सूखा, पानी की बाढ़, आग, टीड़ी आदि कुछ भी हो। राजा दसवें भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नहीं कर सकता था, तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था[१]।

किसान को त्रेता और द्वापर में खेती की आजकल की सी साधारण विपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। चूहे, घूस, छछून्दरें बीज खा जाती थीं, चिड़ियाँ आदि अंकुरों को नष्ट कर देते थे। अत्यन्त सूखा या बहुत पानी से फ़सलें बरबाद हो जाती थी। अच्छी फ़सलों के लिए उस समय भी भाँति-भाँति के उपाय करने पड़ते थे। परन्तु खेती को जब कभी हानि पहुँचने की सम्भावना होती थी राजा रक्षा का उपाय करने का जिम्मेदार था। और जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता था राजा के ही पाप से पड़ता था। राजा रोमपाद के राज में उन्हीं के पाप-से काल पड़ा बताया जाता है।[२] राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे।

१. आदायबलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत्पापं चतुर्थांशेन भूमिपः॥ —महाभारत

२. बालकांड, सर्ग १; अयोध्याकांड, सर्ग १००; बालकांड, सर्ग ९। ७

"एतस्मिन्नेव कालेतु रोमपादः प्रतापवान्॥
अंगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः।
तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा।
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा॥ इत्यादि।
व्यतिक्रमात्सुराजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या।

इस युग में भी गोशालायें बहुत उत्तम प्रकार से रक्खी जाती थीं। इस युग में घोष पल्लियाँ[1] अर्थात् ग्वालों के गाँव के गाँव थे और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अन्त में नन्दगाँव, गोकुल, बरसाना और वृन्दावन तक गोपालों के गाँव थे और कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज में भी मथुरा के पास इन गाँवों में दूध, दही की नदी बहती थी। और नन्द और वृषभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय में भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढ़ई, धीवर, नाई, धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार), इषुकार (तीर बनानेवाले), चमड़ा सिझानेवाले, घोड़े के रोज़गारी, चित्रकार, पत्थर गढ़नेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रङ्गरेज़, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नक़ली दाँत बनानेवाले, दाँत के वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रन्थों में आई है।[2]

१. तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड १। प्र० ४। अ० ९। ख० २। से मालूम होता है कि गायें तीन बार चरने को भेजी जाती थीं और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

"त्रिषु कालेषु पशवः तृणभक्षणार्थं सञ्चरन्ति।
तत्तन्मध्यकालो तु रोमन्थं कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।" अर्थ स्पष्ट है।

२. शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या कांड सर्ग १००, बालकांड, सर्ग ५। हम वेद के मन्त्रों का उदाहरण नहीं देते क्योंकि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अतः पाठक किसी भी मन्त्र को

कपड़े की विनाई की कला भी अपनी हद को पहुँच चुकी थी ! सोने और चाँदी के काम के कपड़े, ज़री के काम के पीताम्बर आदि भी वनते थे। जिनमें जगह-जगह पर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपड़े पहनते थे। रँगाई भी अच्छी होती थी। रुई के मैल को उड़ाने के लिए इस युग में एक यन्त्र काम में आता था। ऊन के रेशम के बड़े अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन और रंगीन और चमकीले कपड़े बनते और वरते जाते थे।[1]

उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकाण्ड का सारा सर्ग ही यहाँ पठन योग्य है।

१. "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विजः" इत्यादि

अयोध्याकांड अ० ३२। श्लोक १६।

"भूषणानि महार्हाणि, वरवस्त्राणि यानि च"

अयोध्याकाण्ड ३०।४८

सुन्दर काण्ड का नवाँ सर्ग भी द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"साऽपोत्फुल्लनयनां पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि

अयोध्याकांड ७।७

"जातरूपमयैर्मुख्यैरंगदैः कुण्डलैः शुभैः।
सहेमसूत्रैर्मणिभीः केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि

अयोध्याकांड ३२।५

"दान्तकाञ्चनचित्रांगैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः। इत्यादि

सुन्दरकांड १०।२

"शैक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दुलो मयूरान् कुक्कुटांस्तथा।

सुन्दरकांड ११।१५

ऐसा जान पड़ता है कि पेशेवालों की पंचायतें भी उस समय अवश्य थीं। जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।[१]

खेती के काम में स्त्रियों का भी भाग था। खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने में स्त्री पुरुष दोनों शामिल होते थे।[२] जहाँ पुरुष अन्न उपजाता था वहाँ किसान की स्त्री अन्न के काम को पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जंगलों से लाक्षा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम में लाते थे और इसका व्यापार इतना बढ़ा-चढ़ा

"तां रत्नवसनोपेतां गोष्ठागारावतंसिकाम्।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धां प्रमदामिव भूषिताम्।

सुन्दरकांड ३। १८

१. अथर्व वेद, १।९।३; शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१; ऐतरेय ब्राह्मण, १३।३९।३, ४।२५।८-९।; ७।१८।८; छान्दोग्य उपनिषद्, ५।२।६; कौषीतकी उपनिषद ४।२०, २।६, ४।१५।; बृहदारण्यकोपनिषद १।४।१२।

२. येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्ने इहवर्धयेयं सजातानां श्रैष्ठ्य आधेह्येनम्॥ अथर्व. १।९।३
हे अग्ने! जिस मन्त्र से तू देवताओं को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को 'श्रेष्ठ' पद का अधिकारी बना।

"श्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यँ श्रैष्ठ्यँ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदं सर्वमसानीति" : छान्दोग्य अध्याय ५ खण्ड ६०। मंत्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रैष्ठ्य स्वाराज्यं पर्येति" ४।२०, "भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इदं श्रैष्ठ्याय यम्यते" ४।१५ कौषीतकी ब्राह्मणोपनिषत्॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयांसं हिंसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

था कि भारत से बाहर के देशों में भी रंग की सामग्री विकने को जाया करती थी।

गाँव में अन्न, पशु, आदि से बदलकर और जरूरत की चीजें लेने की चाल तब भी थी जैसी कि आज अन्न से बदल कर लेने की चाल बाक़ी है। बदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्कों का चलन न था। सिक्कों का तो उस समय सतजुग से प्रचार चला आया था। हिरण्यपिण्ड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल एक छोटा सिक्का था, जिसमें एक रत्ती सोना होता था।[१] बात यह है कि उस समय गौएँ सस्ती थीं और उनके पालने का खर्च बहुत नहीं था। गौओं की संतान सहज ही बढ़ती थी और उत्तम से उत्तम पोषक भोजन घी, दूध, दही कौड़ियों के मोल था। अनाज देश में ही खर्च होता था। रेल की कांचियों में लद-लदकर कराँची के बंदरगाह से बाहर नहीं जाता था। इस तरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार-व्यापार में सच्ची अदला-बदली से काम लेते थे। उस समय धन और सम्पत्ति का सच्चा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहु महाजन थे वे सोने, चाँदी, मोती, मूंगे और रत्नों को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने, चांदी और रत्नों के सामान बहुत होते थे। परंतु ऐसे लोग भारी संख्या में न थे। भारी संख्या किसानों की ही थी।

१. शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६ : ५।५।१६ १२।७।२।१३। ; १३।२।३।२ ; तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।६२ और १२।७।७ और १७।६।२.

सोना, चाँदी, रत्न, टंक, वंग, सीसा, लोहा, ताँबा, रथ घोड़े, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युग में धन, सम्पत्ति की वस्तुयें समझी जाती थीं जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँ से पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह बँट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान में एक-एक बार हज़ार-हज़ार गौएँ, बीस-बीस हज़ार अशर्फियाँ विद्वान् ब्राह्मणों को दी हैं। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८५ हज़ार सफ़ेद घोड़े, दस हज़ार हाथी और अस्सी हज़ार गहनों से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को दीं।[१]

इसी युग के सिलसिले में महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अंत और कलियुग के आरंभ में पड़ता है। महाभारत के समय में हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सबकी राज्य-व्यवस्थाओं में खेती, व्यापार और उद्योग के बढ़ाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व में नारद ने और बातों के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोज़गार में सब लोगों के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का सुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राज में रोज़गारवाले विभाग में अच्छे लोग रक्खे गये हैं न ?" इस अवसर पर रोज़गार के अर्थ में वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्ति में वैश्यों या किसानों के सभी धन्धे समझे जाते हैं। श्रीमद्भागवद्गीता में, जो महाभारत का ही एक अंश

१. छान्दोग्योपनिषद ४।१७.७ ; ५।१३।१७ और १९ ; ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ८।४८ ; तैत्तरीय उपनिषद १।५।१२ ; वृहदारण्यकोपनिषद ३।३३।१ ; शतपथ ब्राह्मण २।६।३।९ ; ४।१।११ ; ४।३।४।६ ; तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११, १२

हैं; भगवान् कृष्ण ने कहा है कि खेती, वनिज और गोपालन ये तीनों धन्धे स्वभाव से ही वैश्यों के लिए हैं। खेती में वह सब कारबार शामिल है जो खेती की उपज से सम्बन्ध रखते हैं। और गोरक्षा में पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह वनिज में सब तरह का लेनदेन और साहूकारी शामिल है इन सबका नाम उस समय वार्ता था और आजकल अर्थशास्त्र है।[1]

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल में व्यावहार और उद्योग-धन्धों पर लिखते हुए श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रंथ 'महाभारत-मीमांसा' में खेती और बागीचे के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह हिन्दी में ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यों का त्यों दे देते हैं:—

"महाभारत काल में "आजकल की तरह लोगों का मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम-से-कम उतना तो महाभारत काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बड़े-बड़े तालाब बनाकर लोगों को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न

१. कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः।
वार्तायां संश्रिते नूनं लोकोयं सुखमेधते ॥

—मराभारत, सभापर्व

उस समय में विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, दंडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दंड नीति, धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदांत था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

किया है कि 'तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलंबित नहीं है न? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानों पर तालाब बनाये हैं न?' यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पानी दिये हुए खेतों की फ़सल विशेष महत्त्व की होती थी। उस ज़माने में ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियों के रंगों की पैदावार भी सींचे हुए खेतों में की जाती थी। (बाहर के इतिहासों से अनुमान होता है कि उस समय अफ़ीम की उत्पत्ति और खेती नहीं होती रही होगी।) उस समय बड़े-बड़े पेड़ों के बाग़ीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बाग़ीचों में आम के पेड़ लगाये जाते थे। जान पड़ता है कि उस समय थोड़े अर्थात् पाँच वर्षों के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम थी। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच वर्ष के आम के बाग़ीचे को जैसे भग्न करें' इस उपमा से आजकल के छोटे-छोटे क़लमी आम के बाग़ीचों की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोड़ा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बातें मालूम हो सकती हैं वे ऊपर दी गई हैं। × × × किसानों को सरकार की ओर से बीज मिलता था, और चार महीनों की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानों को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था उसका ब्याज फ़ी सैंकड़े एक रुपये से अधिक नहीं होता था। खेती के बाद दूसरा महत्त्व का धंधा गोरक्षा का था। जंगलों में गाय चराने के खुले साधन रहने के कारण यह धंधा खूब चलता था। चारण लोगों को बैलों की बड़ी आवश्यकता होती थी, क्योंकि उस ज़माने में माल लाने

१. चूतारामो यथाभग्नः पंचवर्षः फलोपगः।

खेलाने का सब काम बैलों से होता था। गाय के दूध-दही की भी बड़ी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के सम्बन्ध में पूज्य बुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हें अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव तंतिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[1] उससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में जानवरों के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरों भेड़ों का भी बड़ा प्रतिपालन होता था। "जाबालि" शब्द "अजापाल" से बना। उस समय हाथी और घोड़ों के सम्बन्ध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रंथिक नाम का चाबुक-सफवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[2] उसने कहा "मैं घोड़ों का लक्षण, उन्हें सिखलाना, बुरे घोड़ों का दोष दूर करना और रोगी घोड़ों की दवा करना जानता हूँ।" महाभारत में अश्वशास्त्र अर्थात् शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत-काल में कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि "तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोड़े और हाथी के सम्बन्ध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।[3]

१. क्षिप्रं च गावो बहुला भवंति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन॥

२. अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं च चिकित्सितम्॥

३. निःप्रस्तुतमदः शुष्मी षष्टिवर्षो मतंगराट्॥४॥
म-भा. सभापर्व, अ० ६५.१

महाभारत-मीमांसा में ऊपर की लिखी बातों से यह ज़ाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरंभवाले समय में गाँव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की-सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़ आग और धरती बेचने की चीज़ें नहीं थीं।[१] जान पड़ता है कि उस समय तक खेतों के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय से जान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानों के समय में रेहन और बय करने की रीति ज़ोरों से चल पड़ी, और संवत् १८४४ में तो कम्पनी सरकार ने नियम बना दिया, कि क़ानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री कराके ज़मींदार अपनी ज़मीन रेहन या बय करा सकता है।

साठवें वर्ष में हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उनके तीन स्थानों से मद टपकता है। कानों के पीछे, गंडस्थलों से और गुह्य देश में। महाभारत के ज़माने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के सम्बन्ध का ज्ञान कितना पूर्ण था।

१. अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेयाः कथञ्चन। —महाभारत

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हज़ार-डेढ़ हज़ार बरस तक वही दशा समझनी चाहिये जो महाभारत के आधार पर मीमांसा में दी गई है। आज से लगभग ढाई हज़ार बरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गाँव के सम्बन्ध में बुद्धमत के ग्रंथों में से बहुत-सी बातें निकाली जा सकती हैं। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल में भी देहाती ही था। किसान लोग अपने-अपने खेत के मालिक थे और गाँव के किसानों की एक जाति-सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासतें, ज़मींदारियाँ या ताल्लुके न थे। एक जातक में लिखा है कि जब राजा विदेह ने संसार छोड़कर संन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनों की अपनी राजधानी मिथिला छोड़ी और सोलह हज़ार गाँव का अपना राज छोड़ा। इससे पता चलता है कि सोलह हज़ार गाँववाले राज्य के भीतर मिथिला नाम का एक ही शहर था। उस समय गाँवों के मुकाबले शहरों की संख्या इतनी थोड़ी थी कि अगर हम एक लाख गाँवों के पीछे सात शहरों का औसत मानलें और यह भी मान लें कि आज कल की तरह सारे भारत में सात लाख से ज्यादा गाँव नहीं थे तो सारे भारत में उस समय शहरों की कुल गिनती पचास से अधिक नहीं ठहरती।

शहर की लम्बाई-चौड़ाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमें न केवल लम्बे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पास के गाँव भी जरूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरों में बड़े-बड़े गाँव और क़स्बे मिल ही जाते हैं। जातकों में गाँवों के रहनेवालों की संख्या तीस परिवारों से लेकर एक हज़ार परिवारों तक थी और एक परिवार की गिनती में दादा, दादी, माँ, बाप, चाचा, चाची, बेटे बेटी, बहुएँ और पोते, पोती, नाती, नतिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गाँव में रहते हैं उसी तरह पहले भी रहा करते थे; और जैसे आज यह नहीं कहा जा सकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्ती को गाँव कहेंगे उसी तरह तब भी गाँव की कोई नपी तुली परिभाषा न थी।[1]

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पड़ते थे तो गाँव के सब लोग मिलकर उसमें उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गाँव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गाँव के सब रहनेवाले मिल कर सलाह करते थे। उसमें भोजक भी शामिल होता था। एक जातक में लिखा है कि बोधिसत्व और गाँववाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सड़कों में जहाँ-कहीं पत्थर या रोड़े थे रम्बों से निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौक़े राह में पेड़ पड़ते थे, जिनसे रथों के और गाड़ियों के चलने में रुकावट होती थी, उन्हें फरसों से काट डाला, ऊँची नीची, उबड़-खाबड़

१. जातक ३।३६५; ४।३३०; विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२; जातक १।१०६,

जगहों को बराबर कर डाला। उन्होंने सड़कें ठीक कर डालीं, पानी के तालाब बना डाले और एक बड़ा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छत के लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम में शरीक होने को वह राज़ी हो गई और उन्हें वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गाँव का सुधार कराने के लिए गाँववालों के साथ मिलकर काम करने में शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गाँव वालों के मन में ऐसा भाव भी था कि अपने खेत में मोटे से मोटा काम करने में किसी तरह की हेठी न थी, पर राजा के यहाँ जाकर बेगार करना नीच काम था।[१]

ग्राम जो जनपद एक अंश था, या सीमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, वन और उपवन होता था। आज भी आनन्दवन, प्रमोदवन, सीतावन, वृन्दावन आदि वनों के नाम जहाँ-तहाँ बस्तियों में भी पाये जाते हैं। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदि में अरण्य का पता लगता है। इन वनों और अरण्यों में जंगली जानवर और जंगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, संन्यासी अपनी कुटी बनाकर गाँव से दूर रहा करते थे। जंगल प्रायः सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानी से जुड़े हुए होते थे राजा के अधिकार में समझे जाते थे। लोग जंगलों से लकड़ियाँ बे रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि में लोग अपने पशुओं को चरने के लिए छोड़ देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोड़ी मजूरी पर

१. जातक १।११९; १।३४३

सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलों में रहता और पशुओं की रक्षा करता था।[1]

इस काल में गाँव के चारों तरफ़ कहीं-कहीं दीवारें भी होती थीं और गाँव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतों में बाड़ें लगी होती थीं। जाल भी तने होते थे और खेतों के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थ की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बँधी होती थी। नालियाँ अक्सर साझे की हुआ करती थीं जिनसे दोनों ओर के खेत साझे में सींचे जाते थे। ये नालियाँ और गड्ढे, जिनमें पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नहीं लगता कि किस प्रांत में, औसत जोत का कितना वर्गफल ठहरता था पर जातकों से यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हज़ार-हज़ार करीसों (बीघों) की खेती थी। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहाँ पाँच सौ हलों की खेती होती थी। और वह मजूरों से हल जुतवाता था।[2]

इस युग में लोग दुख भरे शहरों में रहना इस लोक और पर-लोक दोनों के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर में जो रहता है वह मोक्ष नहीं पा सकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहर में कभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण न करना चाहिए[3]। सूत्रों में शहर के रहनेवाले के लिए कोई संस्कार, यज्ञ

१. जातक १।३१७; ५।१०३; १।३८८; ३।१४९; ३।४०१; १।२४०; ४।३२६; १।१९४; १।३

२. जातक १।२३९; २।७६।१३५; ३।७; ४।३७०; १।२१५; १।१४३।१५४; २।११०; ४।२७७; ४।१६७; १।३३६; ५।४१२; २।३५७; १।२७७; ३।१६२; ३।२९३; ४।२७६; २।१६५।३००;

३. आपस्तंब धर्मसूत्र, १।३२।२१; बौध्यायनसूत्र; २।३।६,३३

या विधि नहीं दी हुई है। परंतु किसानों के लिए पद-पद पर रीतियाँ और विधियाँ दी हुई हैं। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोने के समय, काटने के समय, दँवाने के समय और नये अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानों की क्रिया थी। बार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, मिटे पर, वाल्मीकों (बांबियों) पर, गाँव से बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गाँव के रहनेवाले गृहस्थों और विद्वानों के लिए भी आदेश है। शहर के रहनेवालों के लिए नहीं[1]। अंग्रेजी के (Buddhist India) "बुद्ध कालीन भारत" नामक ग्रंथ में मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरों का पता लगता है जिनमें से ये छः महानगर कहे गये हैं—श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा, को जहाँ बुद्ध भगवान् ने शरीर त्याग किया है, थेर आनन्द ने जंगल का एक छोटा सा क़स्बा लिखा है। पाटलिपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक पता न था।

राजा को खेत की उपज में से वार्षिक दसवाँ भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भू-पति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी, उसे गाँव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामात्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खड़ी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढ़ाकर किसी-किसी कारण से आठवाँ या छठा अंश तक भी कर देती थी। किसी-किसी का यह कर राजा छोड़ भी देता था, या किसी समूह या गाँव को मुक्त भी कर देता

१. गोभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,-३० . ३।५।३२-३५

था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियों में आई। परंतु पंचायती राज जहाँ-जहाँ थे वहाँ-वहाँ कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एक-आध जगह पंचायती राज में चंदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लों के पंचायती राज में पंचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान अपनी यात्रा में बस्ती के पास आवें तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पाँचसौ रुपये दण्ड के होंगे।[1] यद्यपि जंगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब जरूरत पड़ती थी तब वह जंगल की ज़मीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद में खेती करनेवाले मजूरों और किसानों से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गाँववाले राजा के लिए हरिण के जंगल घेर रखते थे कि उन्हें समय-कुसमय शिकार हाँकने के लिए काम-धाम छुड़ाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज में भूमि बेची नहीं जा सकती थी पर दान दी जा सकती थी। कोसल के राज में बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि में बाड़ नहीं लगी होती थी उसमें सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकड़ी काट सकते थे, फ़ूल चुन सकते थे, फल तोड़ सकते थे। खेती के नियम कड़े थे, परंतु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिल्कियत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज़ (काग़ज़ पत्र), गवाह और क़ब्ज़ा प्रमाण माने जाते थे।[2]

१. विनय पिटक १।२४७

२. जातक ४।२८१ ; विनयपिटक २।१५८ ; आपस्तम्ब २।११।२८ (१) १।६।१८ (२०); गौतम १२।२८; १२।१४-१७ ; वशिष्ठ सूत्र १६।१६

यूनानी लेखकों से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की—रबी और खरीफ़ की—दो फसलें होती थीं और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते हैं वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खँडसालें चलती थीं। इतनी शकर तैयार होती थी कि संसार के बाहर के सभी सभ्य देशों में यहाँ से शकर जाती थी।[1] सुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के इस समय भी बनते थे और जंगल की औषधियाँ और तरह-तरह का माल अब भी उसी तरह काम में आता था। वाणिज्य व्यापार उसी तरह बढ़ा-चढ़ा था। जो बातें हम पिछले अध्याय में लिख आये हैं उन बातों का, विदेशियों के बयान से, इस काल में बहुत ऊँची अवस्था में होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशों में इसी समय में शुरु हुआ। आना-जाना, बनिज-व्यापार पहले से ज्यादा बढ़ गया। यहाँ के बने कपड़े शकर, चित्रकारी, मूर्तियाँ हाथी दाँत की बनी सुन्दर चीज़ें, मसाले आदि भाँति-भाँति की वस्तुयें भारत से बाहर बड़ी मात्रा में जाती थीं और यहाँ की सभ्यता और धन सम्पति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षों के बारे में जहाँ अपने यहाँ के ग्रन्थों में चर्चा आया करती है वहाँ मेगस्थनीज़ जैसे विदेशी कहते हैं कि भारतवर्ष में अकाल कभी पड़ता ही नहीं। इससे यह अटकल लगायी जा सकती है कि अकाल पड़ते थे जरूर, परन्तु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे

१. स्ट्राबो १५वीं—६९३, मेगेस्थनीज़ खण्ड १। स्ट्राबो १५वीं ६९० से ६९२ तक।

और जहाँ-कहीं पड़ते थे वहीं इनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत में फैल नहीं जाते थे।

२. बौद्धकाल का अन्त

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकों में उस काल के सम्बन्ध में एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओं की पंचायतें संगठित थीं। 'मृगपक्ख' जातक (४।४११) में इस तरह की अट्ठारह पंचायतों की चर्चा है जिनमें से बढ़इयों, लुहारों, खाल सिझानेवालों और चित्रकारों की पंचायतों का विशेष उल्लेख है। परन्तु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) में लिखा है—"डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातकों और धर्मग्रंथों से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशेवालों की पंचायतें संगठित थीं—(१) काठ के काम करनेवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिन में सोना-चाँदी साफ़ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे[1] (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले"।[2] एक जातक में (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकड़ी के काम का भारी केंद्र था जिसमें एक हज़ार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायतें थीं और हर पंचायत का सरपंच जेट्ठक कहलाता था (जेट्ठक का अर्थ है बड़ा भाई)।.....इन पंचायतों में तीन विशेषतायें थीं। (१) सरपंच एक जेट्ठक होता था (२) पेशा अपने कुल का

१. जातक ६।४२७, जातक नं० ४१५, जातक २।२९५

२. गौतम के सूत्र ११।२१

चलता था और (३) धन्धा अपनी जगह में बँध जाता था, (या यों कहना चाहिए कि खास-खास धन्धों के लिए खास-खास जगहें प्रसिद्ध हो जाती थीं ।) जातकों से मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पंचायत का सरपंच राज-दर्बार में रहनेवाला एक बड़ा मंत्री होता था। जेट्ठक के सिवाय सरपंच को 'पमुक्' (प्रमुख या सभापति)" भी कहते थे।

बनारस के राज की यह विशेषता मालूम होती है कि उस समय पंचायत के सरपंच काशिराज के बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपंच तो सारे राज्य का कोषाध्यक्ष ही था।[1] ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़े से बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपास के गाँवों में कारीगरी और कलाओं के काम बढ़े-चढ़े थे। रोज़गार इतना बढ़ गया था कि शहर के पास के गाँवों में किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओं में भी दक्ष हो गये थे। हम जातकों में बारम्बार ऐसे गाँवों का वर्णन पाते हैं जैसे लुहारों के गाँव जिनमें एक हज़ार घर लुहारों के ही थे। इसी तरह ऐसे गाँव भी थे जिनमें पाँच-पाँच सौ घर बढ़इयों के थे। इसी प्रकार कुम्हारों के भी गाँव के गाँव बसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषादगाम इत्यादि पेशेवरों के नाम से भी गाँव बसे थे।[2] इन गाँवों के पेशेवाले शहर में रहनेवाले पेशेवालों से भिन्न थे। वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढ़ई भी थे और खेती भी करते थे। खेती के काम में उनका सारा समय नहीं लगता था। वे खेती का सारा काम अपने अपने हाथों से करते

१. जातक ३।३८७ ; जातक २।१२।५२

२. जातक ३।२८१—६;; जातक २।१८।४०५; जातक ३।३७६।५०८; जातक ६।७१; ३।४९;

थे तो भी उन्हें पेशे का काम करने के लिए काफ़ी संयम मिल जाता था, और जिनका पेशे का कारबार बहुत बढ़ा हुआ था वे मजूरों से काम लेते थे। जान पड़ता है कि उस समय बेकारी की बीमारी न थी।

ये पंचायतें क़ानून बनाती थीं, मुक़द्दमे फ़ैसले करती थीं और जो कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहार में लाना भी उन्हीं का काम था। विनयपिटक में लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तबतक संन्यासिनी बनाये जाने का अधिकार नहीं है जबतक पंचायतों की ओर से आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पंचायत में शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुष का वैमनस्य भी, पंचायत के सामने आता था और पंचायत निबटारा करती थी।[1]

किसी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल में खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज में खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमें तो संदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशुपालन वैश्यों का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढ़ाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढ़े होते थे। ऐसे ब्राह्मणों के लिए सबसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम बनियई थी। सेवा का काम सबसे नीच काम था और भीख तो वही माँगता था जो गया-गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरबार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हें इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्रका काम करने

१. विनयपिटक ४।२२६; गौतम ११।२१,

लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपने कई बेटों को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियों के सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्यों का) काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नहीं समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।[1] यद्यपि वे ब्राह्मणत्व और क्षत्रित्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने से कोई उन्हें ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था। जातकों और सूत्रों में ऐसे ब्राह्मणों की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते हैं, गौएँ चराते हैं, बकरी का रोज़गार करते हैं, बनिये का काम करते हैं, शिकार खेलते हैं, बढ़ई और लुहार का काम करते हैं, जुलाहे का काम करते हैं, बाण चलाते हैं, बनजारों की रक्षा करते हैं, रथ हाँकते हैं और सँपेरे का काम करते हैं।[2] इस तरह के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशवाले उस समय के वैश्य और शूद्र वंशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना सम्बन्ध हो गया कि आज इन पेशेवालों में से यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हीं में देखा जाता है जो हाल के ही पतित हैं। अनगिनतियों ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने में उन्हें

१. सुत्तनिपात ३।९; मज्झिम निकाय २।१८०, जातक ४।३६३

२. जातक २।१६५; ३।२९३; ४।१६७-२७६; ३।४०१; ४।१५; ५।२२-४७१; २।२००; ६।१७०; ४।२०७; ४५७; ५।१२९;

उचित गर्व है, वे उसे पतन नहीं मानते। उस काल में भी यही भाव सबसे ऊपर था। कहीं-कहीं ब्राह्मण किसान बड़ा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था। एड़ी से चोटी तक बोधिसत्व गिना जाता था।[1] "उत्तम खेती, मध्यम बान; निर्धिन सेवा भीख निदान" यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए राह दिखानेवाली थी।

उस काल में मजूर और शूद्र दो तरह के थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सब तरह के काम करते थे। बड़े-बड़े खेतिहर अपने यहाँ मजूर रखकर खेती का काम कराते थे। मजूरी सब तरह की दी जाती थी। भोजन, कपड़ा और रुपये सबकी चाल थी। इन दो प्रकारों के सिवाय मजूरों का एक तीसरा प्रकार भी था। कैदी, ऋणी और प्राणदंड के बदले काम करनेवाले और अपने आप अपने को बेच देनेवाले या न्यायालय से दंड पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मीयाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगों की गिनती भारतवर्ष में बहुत न थी। साधारण मजूरों की अपेक्षा इन दासों के साथ बर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड़-प्यार होता था। इन्हें लिखना-पढ़ना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौक़ा दिया जाता था। कभी-कभी किसी के द्वारा इनके साथ कड़ाई का बर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जब तक मुक्त नहीं हो जाता था, तब तक धर्म संघ में वह सम्मि-

1. जातक ३।१६२

त्रित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम में हर्ज होता। इन दासों और दासियों को अपने जीवन से असंतोष नहीं था क्योंकि इनके भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।[1] नित्य की मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आजाते थे कि उसका जीवन गुलामों की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।[2]

उन दिनों रहन-सहन का खर्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातकों से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान में एक अच्छा गधा खरीदा जा सकता था। चौबीस मुद्राओं में एक जोड़ी बैल मिल जाते थे। अर्द्धमासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शापण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्रायें एक-एक रुपये के बराबर मानी जायँ तो उस समय का खर्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है। सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए यह अर्थशास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

१. जातक १।४५१; मज्झिम निकाय १।१२५; जातक १।४०२ विनयपिटक १।७६, जातक ५।२१३, ६।५४७

२. जातक १।४२२; ३।४४४

: ४ :

चाणक्य के समय के गाँव

इतिहास लिखनेवालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बागडोर चाणक्य के हाथ में आई। इस प्रकांड पण्डित ने 'अर्थ-शास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी से उस काल के बारे में पता लगता है जिसमें मौर्य्य वंश का राज हुआ था और जो विक्रम के एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गांवों के कई तरह के विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गाँव थे जिन्हें अन्न, पशु, सोना, जंगल की पैदावार आदि किसी रूप में कोई कर नहीं देना पड़ता था। ऐसे गांव भी थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही घी मक्खन आदि मिलते थे।[१] कुछ बातों में तो सभी गाँव समान थे। हर गाँव में बड़े-बूढ़ों की एक पंचायत होती थी। इस पंचायत का जो कोई सरपंच होता था वही सरकार की ओर से गाँव का मुखिया माना जाता था। जमीन्दारी का कोई रिवाज नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गाँव में घर सब एक साथ लगे होते थे बीच में गलियाँ होती थीं। बस्ती के चारों ओर बहुत दूर तक फैली

१. अर्थशास्त्र (पण्डित प्राणनाथ विद्यालंकार का उल्था) पृष्ठ १२९, ३९-४१।

हुई नाज की, विशेष रूप से, धान की खेती होती थी। हर गाँव में मिली हुई पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बन्दोवस्त राजा को करना पड़ता था। गृहस्थों के अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमि में वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमें बनजारे और घूमनेवाली जंगली जातियाँ आकर ठहर जाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थीं।[1] गाँवों की हदें बँधी हुई थीं। हर गाँव में चौपाल और दालानें पंचायतों के काम के लिए बनी होती थीं और गाँव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतंत्र होता था। गाँव के भीतरी बन्दोवस्त में किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गाँववाले सब बातों का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियाँ या चरवाहों की बस्तियाँ न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थीं और न गाँवों की तरह सुसंगठित थीं। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समय में ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज दरबार में गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियों के अध्यक्ष अलग होते थे।[2] गोशाला के अध्यक्ष को केवल गाय भैंस की ही खबर नहीं लेनी होती थी, बल्कि भेड़, बकरियाँ, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तों के लिए भी बन्दोवस्त करना पड़ता था।

गाँव बसाने के सम्बन्ध में कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो नियम दिये हुए हैं उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहाँ हम पण्डित प्राण-नाथजी के अनुवाद से (पृ० ३६-४१) नीचे जो अवतरण देते हैं उससे उस समय के गाँव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है:—

१. मेगेस्थनीज़ (अंग्रेज़ी १, ४७)

२. अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

"परदेश या स्वदेश के निवासियों के द्वारा शून्य या नवीन जनपद को बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवार से पाँच सौ परिवार तक का हो। उसमें शून्य कृषकों की संख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जाँय कि एक दूसरे की रक्षा कर सकें। नदी, पहाड़, जंगल, पेड़, गुहा, नहर, तालाब, सीभल, पीतल तथा वड़ आदि से उनकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामों के मध्य में स्थानीय, चारसौ ग्रामों के मध्य में द्रोणमुख, दोसौ ग्रामों के मध्य में खार्वटिक तथा दस ग्रामों के मध्य में संग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायँ। राष्ट्र-सीमाओं पर अन्तपाल के दुर्ग खड़े किये जायँ और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चंडाल तथा जंगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमा की देख-रेख करें।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियों को अभिरूप फलदायक ब्रह्मदेय[1] दिया जाय और उनको राजदंड तथा राज कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, संख्यायक, गोप, स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व दमक, जंघारिक आदि राज-सेवकों को भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सकें या थाती (गिरवी) रख सकें। राजस्व देनेवालों को ऐसे खेत दिये जायँ जो कि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हों। खेतिहरों को नई भूमि न दी जायँ। जो खेती न करें, उनसे खेत छीन कर अन्यों के सिपुर्द किये जायँ। ग्राम भृतक या बनिये ही उनपर खेती

१. ब्रह्मदेय वह दान है जोकि ब्राह्मणों को स्थिर रूप से सदा के लिए देदिया जाय। ताम्र पात्र तथा बहुत से शिलालेख खोदने से मिले हैं जिनमें पुराने राजाओं ने भिन्न-भिन्न भूमि भागों को ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणों को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालंकार)

करें। जो खेत जोतें वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरें। जो सुगमता से राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुँचाई जाय। साथ ही ख़याल रखा जाय कि अनुग्रह[1] तथा परिहार[2] से कोश की वृद्धि हो और जिससे कोश के नुक़सान की संभावना हो उसको न किया जाय। क्योंकि अल्प कोशवाला राजा नागरिकों तथा ग्रामीणों को ही सताता है। नये बन्दोबस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष-विशेष व्यक्तियों को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर-मुक्ति या परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य अनुग्रह रखा जाय।"

मौर्य्यकाल में भी देश का सबसे बड़ा कारबार खेती का था। इस पर सरकार का बहुत बड़ा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो उपजते ही थे साथ ही गन्ने की खेती बहुत ज़ोरों से होती थी। गुड़ खाँड, मिश्री सभी कुछ तैयार होता था। अंगूर से भी एक प्रकार का मीठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खाँड तैयार करने के लिए गाँव-गाँव में खँडसालें थीं।[3] शक्कर का रोज़गार बड़ा-चढ़ा था। मेगेस्थनीज़ लिखता है :—

"भारतवर्ष में बड़े लम्बे-चौड़े अत्यन्त उपजाऊ मैदान हैं जो

१. अनुग्रह—उत्तम काम करने के बदले में कारीगरों—किसानों को राजा जो धन आदि इनाम में दे उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

२. परिहार—राज्य कर से मुक्त करना। पुनरावृत्ति, वर्षगाँठ आदि समय में राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्य ने इन सब समयों को आदि 'यथागतक' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३. अर्थशास्त्र पृ० ८५, ८६.

खेतों से हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिंचाई के लिए नदियों का जाल-सा बिछा दीखता है.........जौ, गेहूँ, चावल आदि के सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौपायों के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं......जाड़ों में और गर्मियों में दो बार बरसात होती है और साल में दो फ़सलें होती हैं। विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कन्द, मूल और फल होते हैं जिनसे मनुष्यों का बहुतायत से पोषण हो सकता है............। बुरे-से-बुरे युद्ध में भी किसानों की कोई हानि नहीं होती, फ़सल को, पशुओं को, खेतों को या पेड़ लतादि को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता। भारत के किसान बड़े मिहनती होते हैं, बड़े चतुर होते हैं, किफ़ायत से रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबन्ध ऐसा अच्छा है कि खेती का व्यापार बड़ी अच्छी दशा में है। जन, धन की पूरी रक्षा है, न्याय और क़ानून बड़े अच्छे हैं"[1]

मेगस्थनीज़ के लेख से मालूम होता है कि सिंचाई का प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इस बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रबन्ध था, और जिन लोगों को सरकार की तरफ़ से जल मिलता था उसके लिए कर देना पड़ता था। खेती के लिए एक सरकारी अफ़सर अलग था वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ में लिखा है—

"सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रबन्ध कर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्मशास्त्र (झाड़ियों की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पाण्डित्य

१. 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रंथ में पृ० १३९ पर का अवतरण।

प्राप्त कर, या उन लोगों से मैत्री कर, जो कि इन विद्याओं में, परिचित हैं, धान्य, फूल-फल, शाक, कन्द, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलों से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदमियों से बीज डलवाये और हल, कृषि सम्बन्धी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक (कुट्टाक), तेली, रस्सी बटनेवाले, बहेरिये लोगों से उनको सहायता पहुँचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।"

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल में कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफ़सर सीताध्यक्ष होता था उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफ़सर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपड़ा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि बैरागिनों, विधवाओं, विकलाँग लड़कियों, राज्य दण्डितों, वृद्धा राजदासियों और मन्दिर के काम से छुटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियों से ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि के सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जाँच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार से नियम बने हुए थे।[1] और इसके सम्बन्ध में अपराधियों के लिए बड़े कड़े-कड़े दण्ड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करें उनका अँगूठा काट दिया जाय। यही दण्ड उनको भी मिले जो कि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

हों। जान पड़ता है कि कताई के ये नियम राजधानी के पास के गाँव के हैं जिनका सरकारी विभाग से कपास, रुई और मजूरी पाने का बन्दोबस्त था और यह क़ानून उन लोगों के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को बाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरों को कातने की मनाई न थी। शहर से दूसरे गाँव में रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहनने के लिए कपड़े सारी आबादी को चाहिए और दूसरे भारत के बाहर से कपड़े के आने की कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए कताई-बुनाई का काम अवश्य ही गाँव में घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रबन्ध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाई का रोज़गार खेती-बारी की तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी क़ानून था कि किसी के पास खेत हों, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवाले को दे दिये जायँ। इससे कोई बेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों की तालिका से[1] पता लगता है कि उस समय खेती के कारबार के साथ ही साथ खण्डसाल के सिवाय जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं, तिलहनों से तेल निकालने का काम बहुत ज़ोरों से होता था। रंग का कारबार भी बहुत चढ़ा-बढ़ा था। यूनानी लेखकों से पता चलता है[2] कि लाख आदि कीड़ों से पैदा होनेवाले रंग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रंगने के सिवाय लोग अपनी दाढ़ियाँ भी विविध रंगों में रंगते थे। कुम्हार लोग बड़े उत्तम-उत्तम प्रकार के बासन बनाते थे। बँसफोर बाँस

१. कौटिल्य अर्थ शास्त्र (पं० प्राणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक

२. नियारकोस (अंग्रेज़ी) खंड ९ व १० ।

और बेंत और छाल के सब तरह के सामान तैयार करते थे। नदी किनारे के गाँव में धीमर मछलियाँ मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियाँ और सूखे माँस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गाँव से पिस कर शहर में बड़े भारी परिमाण में बिकने को आता होगा।

पञ्चायतों का संगठन उस समय इतने महत्व का था कि उनके लिए संघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र में अलग रखा गया है! इस अधिकरण के पढ़ने से[1] यह जान पड़ता है कि उस समय संघों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी-छोटी पंचायतों को एकत्र करके लोगों ने संघ बना रखे थे। लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि संघ खेती, पशु-पालन और वनिज से सन्तुष्ट रहते थे और शस्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृज्जिक, मद्रक, कुकुर, कुरु-पांचाल आदि के संघ भी थे। इनके बारे में यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से सन्तुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि काम्बोज, सुराष्ट्र आदि बड़ी चतुर जति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित होजाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतों को निर्बल रखने में अपना अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फाँस लगाये रहता था। भेद-नीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस में जुदा हो जायें तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश में बसाकर उनके

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३५ से ३३१ तक

पाँच-पाँच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिए जमीन देन्दे। राजा शब्द से सन्तुष्ट होनेवालों का राजपुत्रों के अनुरूप शासन बनावे।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमें वह देश का कल्याण देखता था तो वह नए गाँव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुड़वाता था। किसी-किसी गाँव को शुद्ध शूद्र गाँव बना देता था और किसी में केवल ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस सम्बन्ध में हम एक लम्बा अवतरण दे आये हैं। इस पर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणों को धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनाने में राजा का भी हाथ था। आज जो भारी संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेती में लगे हुए हैं, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष में एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम में लगा देने में सहायक होता था।

मजूरों और गुलामों की दशा भी बड़ी अच्छी थी। अर्थशास्त्र में यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे "मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतीहरों में हरवाहे, गउओं का काम करनेवालों में ग्वाले और अपना माल खरीदनेवाले बनियों में दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवाँ भाग ग्रहण करें।" मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनों में से किसी का हक़ नहीं मारा जाता था। दासों

के नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमें मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है—,

"उदर दास को छोड़कर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्र को बेचनेवाले सम्बन्धी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को बेचने वाले स्वकुटुम्बी को क्रमशः २४, २६, ४८ पण दंड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूर का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको क्रेता तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दंड के साथ-साथ मृत्यु दंड तक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा बेच सकते हैं तथा गिरों रख सकते हैं। आर्य्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्य दंड तथा उत्पत्ति के साधन विपयक्ष विपत्ति के आपड़ने पर किसी भी आर्य्य जाति के व्यक्ति को गिरों रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छुड़ा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरों रखा है या जिसको सम्बन्धियों ने दो बार गिरों रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागने पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुरानेवाले तथा किसी आर्य को दास बनानेवाले व्यक्तियों को आधा दंड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरों रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरों में रक्खे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपड़ा पहनने को न देकर नंगा रक्खे, या पीटे या तकलीफ दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे उसका (गिरों रखने के बदले दिया गया) धन ज़ब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसीरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतंत्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जाने दिया जाय।"

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० त्रि०) पृ० १६८ से १७१ तक

मजूरों के भी संघ थे। और देश में पूँजीवाले लोग भी जरूर थे। खेतिहर और बनिये मिलकर अपने व्यापार संघ बनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूर-संघ स्थापित किये हुए थे। जहाँ दोनों के सम्बन्ध के नियम दिये गये हैं वहाँ मजूरों की पंचायत (संघ भृताह) के लिए भी नियम हैं। इन सब बातों से पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर संघ शक्ति से काम लेने की चाल बहुत काल से दृढ़ हो चुकी थी।

सिक्कों का चलन भी उस समय बहुत निश्चित था। सोने और चाँदी दोनों के सिक्के चलते थे। ताँबे के सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चौअन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। ताँबे के अधन्ने पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हें मापक, अर्द्ध मापक, काकिणी और अर्द्ध काकिणी कहते थे।' इन सिक्कों के सिवाय व्यापारी लोग एक दूसरे पर हुंडी भी चलाते थे। और इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि गाँव में अदला-बदली का नियम पहले की तरह जारी था। गाँव के लोग इतने सुखी थे कि चौपालों में और पंचायतों के दालानों में अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गानेवाले आकर गाँववालों का मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्र कार ने इस बात को बहुत बुरा बतलाया है क्योंकि इससे गाँववालों के घरेलू और खेत के काम धंधों में बड़ा हर्ज पड़ता था।

प्रोफेसर संतोषकुमार दास लिखते हैं कि इस काल में गाँव के रहनेवालों को आजकल के हिसाब से अमीर तो नहीं कहा जा

१. डाक्टर शमशास्त्री की राय में (अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र पृ० ९८) 'रूप्य रूप' और कर्शापण एक ही चीज़ है। यहाँ पर रुपये के लिए पण शब्द का प्रयोग हुआ।

सकता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी जितनी सीधी सादी जरूरतें थीं, सब सहज में पूरी होती थीं। मेगेस्थनीज़ लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव से संयमी थे। और गहने-पाते काम में तो जरूर लाते थे परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कन्धे पर चद्दर, सफ़ेद चमड़े के जूते एक भले मानस के काफ़ी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यन्त कम थी। और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय में रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार "राजा का कर्तव्य था कि बूढ़े, अपाहिज, पीड़ित और लाचार का पालन करे। और निर्धन, गर्भवती और उनके बच्चों के पालन पोषण का उचित प्रबन्ध करे।[१]"

दैवी विपत्तियों के उपायवाले प्रकरण में आग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, साँप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमों से जनपद को बचाने के उपाय बताये हैं। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहों से रक्षा के सम्बन्ध में जो-जो उपाय बताये हैं उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

पानी—नदी के किनारे के गाँववाले वर्षा की रातों में किनारे से दूर रहकर सोवें। लकड़ी और बाँस की नावें सदा अपने पास रक्खें। तूँबा, मषक, नाव, तमेद तथा बेड़े के द्वारा डूबते हुए लोगों को बचावें। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौड़ें उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्ते कि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन न हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय। माया वेद तथा योगविद्या को जाननेवाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गंगा पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

१. अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३९ से ४१ तक।

व्याधि—चौदहवें अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीक़ों के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयों से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय साधन तथा प्रायश्चित्तों के द्वारा करें। फैलनेवाली बीमारी (मरक) के सम्बन्ध में भी यही तरीक़े काम में लाये जायँ। तीर्थों में नहाना, महाकच्छ का पढ़ाना, गौओं का श्मशान में दुहना, मुर्दे का धड़ जलाना तथा देवताओं के उपलक्ष में रात भर जागना आदि काम किये जायँ। पशुओं की बीमारी के फैलने पर परिवार के देवताओं की पूजा तथा पशुओं के ऊपर से धूप बत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम क़ीमत पर बाँटे। लोगों को इधर-उधर देश में भेज दे। नये-नये कठिन कामों को शुरू करे और लोगों को भोजनाच्छादन दे। मित्र-राष्ट्रों का सहारा लेकर अमीरों पर टैक्स बढ़ावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फ़सल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलों की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जन्तु तथा मछलियों का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहों के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलों को छोड़े। जो लोग पकड़कर चूहों को मारें उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जंगली जानवरों के न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तों को छोड़ रखें उन पर भी पूर्ववत् दण्ड का विधान किया जाय। थूहड़ के दूध में धान को सानकर खेत में छोड़े। ऐन्द्रजालिक तरीक़ों को काम में लावे तथा चूहों के सम्बन्ध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शान्तिमय उपायों को करें। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय।

टिड्डीदल पक्षी, कीड़े आदि के उत्पातों का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय।"

परन्तु उसी समय के लेखक मेगेस्थनीज़ का कहना है कि भारतवर्ष में अकाल पड़ने की बात कहीं सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्त के राज का बंदोबस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्ष में लोग अकाल की पीड़ा नहीं जानते थे। इस सम्बन्ध में चाणक्य का प्रबन्ध बड़ाई के योग्य था।

: ५ :

प्राचीन काल का अन्त

१. चाणक्य के बाद के पाँचसौ वर्ष

अब तक गाँव के बारे में जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के सम्बन्ध में है। चाणक्य के काल के अन्त में दक्षिण भारत के आँध्रों और कुशानों का समय आता है जो विक्रम से डेढ़-सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साढ़े तीन सौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानों का राज उत्तर में था और आन्ध्रों का दक्षिण में था। जो सिलसिला मौर्य्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नहीं हुआ था। भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गाँवों में रहती थी। गाँव थोपों और पल्लियों में विभक्त थे। गाँव का मुखिया आँध्रों के राज्य में सरकारी तौर से रखा जाता था वह झगड़ों का निबटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुजारी मुक़र्रर कर देते थे वह रक़म जब-तक राजा को मिलती जाती थी तबतक गाँव की बातों में राजा दखल नहीं देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गाँव सभी तरह से स्वतन्त्र हैं।[1] और महाभारत में कुल की रीति[2] भी प्रमाण

१. पारस्कर गृह्यसूत्र १--८१३

२. महाभारत आदि पर्व ११३--९

मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवार में बँधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था। इस काल में राजा अपने को पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे जरूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसी को दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातें उलट-पुलट करने की उसे मनाही थी, (१) उसका घर और (२) उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेती के सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना, पढ़ना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिए था और अच्छे और बुरे खेतों की परख भी होनी चाहिए थी।[१] उस समय जरूरत पड़ने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले में उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिंचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और जरूरत पर तक़ावी बँटती थी।[२]

बुनाई का काम इस काल में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। सूत, अन्न और रेशम के उत्तम से उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपड़ों में एक तरह का कपड़ा चूहों की ऊन से बनाया जाता था जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय खास प्रकार के

१. "पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदंच वैश्यस्य कृषिमेव च मनुः १। ९०
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च।
मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः मनुः ९। ३३०

२. महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८१ श्लोक २३-२४; सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७९।

देसी रेशम चरते जाते थे। द्राविड़ कवियों ने कुछ कपड़ों की उपमा "दूध की वाष्प और साँप के केचुल" तक से दी है और वारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी बुनावट इतनी वारीक है कि आँखों को सूत के धागे अलग-अलग दिखाई नहीं पड़ते।

इस काल में भी पेशों और कलाओं के संघ या पञ्चायतें वनी हुई थीं। प्राचीन लिपियों से जुलाहों, कुम्हारों, तेलियों ठठेरों, उदयांत्रिकों, चित्रकारों और मूर्तिकारों की पञ्चायतें अलग-अलग वनी हुई थीं। जो विद्वान महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पञ्चायतों का वड़ा भारी महत्त्व था। महाभारत में लिखा है कि इन पञ्चायतों से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था।[1] सरपञ्चों में फूट डालना या वग़ावत के लिए उभारना, वैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी।[2] जव गन्धर्वों से दुर्योधन हार जाता है तव अपनी राजधानी को लौटना नहीं चाहता। कहता है कि मैं पञ्चायत के मुखियों को कैसे मुँह दिखाऊँगा[3]। उस समय पञ्चायत की रीतियाँ और नीतियाँ धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थीं।[4] अपनी पञ्चायत के

१. आश्रमवासिक पर्व, ७ । ७-९

२. शांति पर्व ५९ । ४९, १९१ । ६४

३. ब्राह्मणाः श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तयः ।
किं मां वक्ष्यंति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि नानहम् ।
वनपर्व २४८ । १६

४. जातिजानपदान्धर्मान्श्रेणी धर्माश्च धर्मवित्
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ मनुः ८ । ४१

सामने वचन देकर जो तोड़ता था उसे राजा देश निकाले का दण्ड देता था। और पंचायत के विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था। ऐसे कड़े नियमों के होते कला और कारीगरों में ऊँची से ऊँची दशा को पहुँचना जरूरी था। इन्हीं पेशेवालों की धीरे-धीरे जातियाँ बन गईं और उस समय की पञ्चायतें आज भी जातियों की पञ्चायतें बनी हुई हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यों और शूद्रों से उनके कर्तव्यों का पालन करावे। अगर ये दोनों जातियाँ अपने-अपने कर्तव्यों का पालन न करेंगी तो संसार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी।[1] उस समय वर्ण धर्म की रक्षा बड़े महत्व की बात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिला-लेख में राजा गौतमीपुत्र वालश्री बड़े गर्व के साथ कहता है कि हम ने चारों वर्ण के एक-दूसरे में मिलकर गड़बड़ करने में रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल में दासों के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप में ही कर देता था। शूद्रों का यही कर्तव्य था कि वे विशेष रूप से किसानों की सेवा करें।[2] बाक़ी दशा दासों की वही थी जो पिछले अध्याय में लिख आये हैं। एक बात इस काल की बड़े मार्के की है कि किसान लोग शूद्रों से अर्थात् मजूरों से लगभग मिलते जारहे थे। मजूर बढ़ते-बढ़ते चरवाहे से गोपालक बन जाता था। बनिये की नौकरी करते-करते आप बनिज करने लग जाता था। बहुत दिनों का किसान का मजूर इनाम में या मजूरी में माफ़ी खेत

१. वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत्। मनुः ८। ४१८

२. महाभारत १२। ६०। ३७; १। १००। १

पाजाता था। इस तरह मजूरी की जाति का आदम बनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत में लिखा है कि छः गायों को चरानेवाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो नित्य के दूध के सिवाय बरस के अन्त में एक जोड़ी गाय बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी में उपज का सातवाँ भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान बनते गये! ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नहीं हो सकते थे। इस तरह तीनों वर्णों के लोग धीरे-धीरे किसान होते गये और किसानों की गिनती बढ़ती गई।[1]

मनुस्मृति में राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग, पेड़, माँस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवाँ भाग कर राजा को मिलता था।[2] महाभारत में साफ़ लिखा है कि कर ज़रूर लगाये जाने चाहिएँ। इसका कारण यह है

१. महाभारत १२।६०।२४, २।५।५४, २।६१।२०

२. पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा॥ ७।१३०
आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च।७।१३१
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च।
मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च॥ ७।१३२
आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः।
दशमं द्वादशं वापि सतां धर्ममनुस्मरन् ८।३३
धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम्।
कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा मनुः १०।१२०

कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा में खर्च लगता है। परन्तु कर बहुत हलका लगाना चाहिए। सभी किसानों से और गाँव के सभी लोगों से कर रुपये पैसे के रूप में नहीं लिया जाता था। किसान अनाज के रूप में देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप में देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप में देते थे। केवल शहर के लोग रुपये पैसे के रूप में देते थे। जो चीजें जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये हैं। उनमें साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और वनिज भी है। साहूकारी और वनिज तो धन के साधन हैं ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमें खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है।[1] सीधी-सादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता। परन्तु मनुस्मृति में केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते हैं कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके सम्बन्ध में विस्तार से जो नियम दिये गये हैं उनसे यह पता चलता है कि भारत में इस काल में आर्थिक संगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष देख पड़ते हैं। उस समय का जीवन बड़ा सभ्य और ऊँचा देख पड़ता है। भाँति-भाँति के अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियाँ जो काम आती थीं, ऊँचे दर्जे की खेती की गवाही देती हैं। भारत का उस समय का

१. सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च॥ मनुः १०।११५

जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था बताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊँची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों में सोना, चांदी, रत्न, गहने और रेशमी कपड़ों के होने की चर्चा है।[1]

२. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय में भारतवर्ष के बाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगाल से पूरब, बर्मा में जाकर भारतीयों ने बस्तियाँ बसाईं और खेतीबारी करने लगे। इससे पहले के काल में भी पता चलता है कि भारत के दक्षिण के हिन्द महासागर में पच्छिम से पूरब तक फैले हुए अनेक टापुओं में बड़े-बड़े जहाजों पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत से लोग जाकर वहीं बस भी गये थे और अपनी संस्कृति का प्रचार भी वहाँ कर रक्खा था। परन्तु जहाँ-जहाँ भारतीय गये और बसे, वहाँ उनका मुख्य कारबार खेती का ही था। और अपनी मातृभूमि में तो सतजुग से गाँव में रहना और खेती-बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राज के बदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ़ जाता था। गाँव में उपज के बढ़ जाने से उसे दूर-दूर पहुँचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढ़ाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियों के केन्द्र बनते

१. "तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः॥ मनुः ५।१११
निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भिरेव विशुद्ध्यति।
अब्जमश्ममयं चैव राजतंचानुपस्कृतम्॥ मनुः ५।११२

गये। यही केन्द्र नगर थे और इन्हीं नगरों में प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियाँ बन गई थीं। ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ़ गये और बलवान राजाओं ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने बस में करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरह के राजाओं में मौर्य्यकाल के राजा बढ़े-चढ़े थे। गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा बढ़े-चढ़े निकले। पर उन्होंने एक बड़ा महत्व का काम भी किया। बाहरी विदेशी जातियों ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लड़ाइयाँ हुईं। गुप्तों ने उन्हें परास्त किया और भारत को भारतीयों के हाथ में रक्खा। गुप्तों के समय में व्यापार बहुत बढ़ गया और शहरों को बड़ा लाभ हुआ तो भी भारत की बहुत भारी आबादी गाँवों में ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था। वे लोग कुओं से, नहरों से, तालावों से और गड्ढों से पानी लेकर सिंचाई करते थे। उस समय जल संचय के लिए 'निपान' अर्थात भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई ज़मीन जोते, बोवे या नहर, तालाब, कुएँ खोदे और यह सब कुछ अपने काम के लिए करे तो जबतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न माँगे। राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावें। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड़ की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न करे जो कोयला लेने के लिए पेड़ को जला डालता है।[1]

१. शुक्रनीतिसार ४।४।=१-११२, १२४-१२७, ४।५।१४१ और २४२-४, २२२-२३,

जंगल से उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चंदन, वट, कदम्ब, अशोक, बकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल, लिकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि बड़े-बड़े पेड़ों की भी चर्चा है। रमनों और जंगलों के अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हें फल-फूल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेड़ों का लगाना और पौधों का पालन पोषण करना खूब जानते थे और औषधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।[१]

कलाओं का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य्य ने तो चौंसठ कलाओं का वर्णन किया है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय में ही ये चौंसठों कलायें चली थीं। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि बहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हें लोग आजकल बिलकुल नई बात समझते हैं। अर्क खींचना, औषधियाँ तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमक का धन्धा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम से कम डेढ़ हजार बरस से पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई बुनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था बल्कि जिसमें सारे संसार में भारतवर्ष की विशेषता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपड़ों का केवल जिक्र ही नहीं किया है बल्कि इनके धोने और साफ़ करने की विधियाँ भी बताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रुई से बने हुए काग़ज़ की भी चर्चा की है।[२]

१. शुक्रनीतिसार ४ । ५ । ९५–१०२, ११५–१२२; २ । ३२०–३२४

२. शुक्रनीतिसार ४ । ३ । १ । १८०

जो गाँव समुद्र के किनारे थे उन गाँवों में अधिकांश मरजीवे रहते थे और समुद्र से मोती, मूँगे, सीप आदि निकालने का काम बहुत ज़ोरों से होता था। सीपों के सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और बाँसों से भी मोती मिलते थे। सबसे अधिक सीपों से मिलते थे।[1] लङ्का के रहनेवाले नक़ली मोती भी बनाया करते थे। उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चाँदी और रत्नों के गहने पहनने का आम रिवाज था। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय गाँव-गाँव में बड़े होशियार सुनार होंगे।[2]

बँसफोर बाँस की चीज़ों के बनाने में ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरों पर शुद्ध बाँस के तने हुए चार पहियों के रथ तैयार करते थे जिनमें तीन-तीन गुम्बद होते थे और चौदह-पन्द्रह हाथ तक ऊँचे होते थे। इन रथों को वे बड़ी सुन्दरता से बनाते, रंगने और सजाते थे। इन पर बड़ी अच्छी चित्रकारी भी करते थे।[3]

उस समय भी पंचायतें बनी हुई थीं। किसानों की, कारीगरों की, कलावन्तों की, साहूकारों की, नटों की और संन्यासियों तक की पंचायतें संगठित थीं। इन पंचायतों के नियम बँधे हुए थे और वह सरकारी क़ानून के अन्तर्गत समझे जाते थे: और उनके अधिकार और उनके नियम उस समय की सरकार भी मानती थी। जो लोग पंचायत के सदस्यों में फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हें

१. शुक्रनीतिसार ४।२।११७-११८

२. मृच्छकटिक नाटक और गरुड़ पुराण में अनेक अंशों से इन बातों का प्रमाण मिलता है।

३. बील, फ़ाहियान—(अंग्रेज़ी) पृष्ठ ५६, ५८

४. शुक्रनीतिसार ४।५।३५-३६

चिन्तकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायँ या वे पंचायत का धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करे और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर में मिले हुए स्कन्दगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।[1] इस लिपि में एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर में नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर में इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान में लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्रपुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा उस समय तक रहेगा जब तक कि, इस बस्ती से चले जाने पर भी, उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः।
अच्छेद्यः सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगुः॥
गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥

याज्ञवल्क्य स्मृतिः॥ २।१८७

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ नं० १६ (सम्वत् ५२१ विक्रमीय)

चिन्तकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायँ या वे पंचायत का धन नष्ट करें तो उन्हें निकाल बाहर करें और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दें। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बातें सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर में मिले हुए स्कन्दगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।[1] इस लिपि में एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर में नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर में इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान में लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्रपुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का क़ब्ज़ा उस समय तक रहेगा जब तक कि, इस बस्ती से चले जाने पर भी, उसमें पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशकः।
अच्छेद्यः सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगुः॥
गण द्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लंघयेच्च यः।
सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्॥
याज्ञवल्क्य स्मृतिः॥ २।१८७

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ नं० १६ (सम्वत् ५२१ विक्रमीय)

कि बेटा प्रायः अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशवरों की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप दादों का पेशा छोड़ देता था उसे राजा दण्ड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड़ देने वाले की बात थी। बाप दादों के पेशे को छोड़ देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोड़ने में हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मन्दसोर के शिलालेख में, जो कुमारगुप्त और बन्धुवर्म्मन का लिखा है,[1] यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पंचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर में वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन बिताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गये, कुछ कवि होगये, कुछ संन्यासी हो गये और बाक़ी बाप दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पंचायत ने सम्वत् ४९२ (विक्रमी सम्वत) में दशपुर में सूर्य का एक बहुत सुन्दर बड़ा मन्दिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पंचायत ने सम्वत् ५२८ वि० में उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि पंचायत में बँधकर भी लोगों को इतनी आज़ादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढ़ा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड़ सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पंचायतों का संगठन बराबर पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा ही सङ्गठन था और दासों और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसी पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख समृद्धि गुप्त काल में भी घटी नहीं थी।

१. फ्लीट (अंग्रेज़ी में) गुप्त लिपियाँ नं० १८

: ६ :

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटों का बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जंगली लुटेरों की चढ़ाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुँचा। परन्तु गाँव और गाँव के खेती आदि व्यापार इन धक्कों से भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतों में बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय में भी खेती-बारी के सम्बन्ध के सारे काम बराबर ज्यों के त्यों होते रहे। इस समय पच्छाँह के देशों में क्या किसानी के काम में, और क्या व्यापार में, और क्या सामुद्रिक यात्राओं में जाटों का बोलबाला रहा। भारतवर्ष में, जैसे सदा से होता आया, जन समुदाय गाँवों में ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेती का था। गाँव-गाँव खण्डसालें चलती थीं, चरखे और करघे चलते थे, गाँव में सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे, सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था में थी। कश्मीर अपने चावलों और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था। मगध भी अपने चावलों के लिए मशहूर था। ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।[१] लिखा है कि मथुरा में १००

१. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेज़ी) जिल्द २, पृ० ८२

मील पच्छिम पार्यात्र नाम के स्थान में इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनों में ही पकता था (इसे साठी का चावल कहते हैं और बरसात में अब भी साठ दिन में ही पकता है) ह्युएनत्सांग ने लिखा है कि लोगों का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था। और जो मांस खाते थे वे हरिण का मांस और ताजी मछलियाँ खाते थे। फलों में, उसने लिखा है कि, इतने हैं कि नाम नहीं गिने जा सकते। आम्र, कपित्थ, आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्बर, मोचा, पंस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, बेर, अनन्नास, अंगूर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये हैं। लिखा है कि कश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था।[1] शिक्षा के विषय में लिखा है कि सात और सात बरस से अधिक के लड़कों को पाँच विद्यायें सिखाई जाती थीं जिनमें से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमें कलाओं और यंत्रों का वर्णन है। कपड़ों के बारे में ह्युएनत्सांग ने भारत के कारीगरों की बड़ी प्रशंसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कम्बल और कराल इन पांच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। इनमें से कम्बल से अभिप्राय था बहुत बारीक ऊनी कपड़े से जो बकरी के बहुत बारीक रोयें से बनते थे। कराल एक जंगली जानवर के बारीक रोयें के बने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरों की फरमाइश पर ही बनते थे। बरांच या महाकच्छ की रूई सदा की तरह हर्ष के समय में भी मशहूर थी, उसके बारीक कपड़े भी मशहूर थे। बुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस बात का थोड़ा सा अन्दाजा बाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि "महल क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तन्तुज, अंशुक और नैत्र से सुशोभित था

१. बील—ह्युएनत्सांग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० २३२

जो साँप के केंचुल की तरह चमकते थे और अकठोर केले के पेड़ के भीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि साँस से उड़ जा सकते थे। छूने से ही उनका पता लगता था। चारों ओर हज़ारों इन्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।[1] क्षौम छाल के कपड़ों को कहते हैं, बादर रुई के कपड़ों को कहते हैं, लाला तन्तुज उस कौशेय वस्त्र को कहते हैं जिसके तन्तु कीड़े की लाला या राल से बनते हैं। नेत्र किसी वृक्ष विशेष की जड़ के रेशों से बने वस्त्र को कहते हैं और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अंशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपड़ा अनेक प्रकार के रेशों और तन्तुओं से बनता था। आज जिनका हमें पता भी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही पता लगता था कि कपड़ा है। उस बारीकी को मिल के कपड़े क्या पहुँचेंगे! बुनने की कला इस हद को पहुँच चुकी थी तो साथ ही कातने की कला भी उसी हद तक पहुँच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल से देख पड़ते थे।

बृहस्पति संहिता से पता चलता है कि गाँववाले मिलकर पंचायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे तो एक पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमें कोई खटके की बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्यों में बंधे रहें। जब कभी चोरों लुटेरों या बेक़ायदा सेनाओं का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा

१. हर्षचरित, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह प्रकरण से।
"क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्निःश्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभिः सर्वतः स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव संछादितं।

जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे।[१] जब कोई ग्राम फ़ायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावड़ी, कुए, मन्दिर, बाग बगीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गाँव की सभा ही इन कामों को सम्पन्न करती थी।[२] पञ्चायत की स्थापना के आरम्भ में पहले परस्पर विश्वास दृढ़ करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी, या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पञ्चायत का काम आरम्भ किया जाता था। पञ्चायत का काम करनेवाले उसके श्रेष्ठी और दो या तीन या पाँच और सहायक होते थे।[३] जो लोग इस तरह कार्यचिन्तक चुने जाते थे वे वेद के धर्म को और अपने कर्तव्य को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारोबार जानते थे। पञ्चायतों के सम्बन्ध में प्रायः वही नियम अब भी बरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये हैं। उनको यहाँ दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल में कारीगरों की ऐसी कम्पनियाँ भी बनी हुई थीं जिनमें पूँजी के बदले सदस्यों के कारीगरी के काम लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। ज़रूरत पड़ने पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

ह्युएनत्सांग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहाँ पर सब तरह के लोगों में धरती का ठीक-ठीक रीति से बँटवारा था खेती से थोड़े खर्च में बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश की

१. बृहस्पति स्मृति १७।५-६.

२. बृहस्पति संहिता १७।११-१२

३. बृहस्पति संहिता १७।७ १७।१७ १७।९.

बची हुई पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले में सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुयें लाते थे। संसार के सभी सभ्य भागों से व्यापार बड़े सुभीते से जारी था। सोने-चाँदी की अटूट धारा व्यापार के द्वारा भारत में उमड़ी चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिन्धु देश पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। इसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने तो विदेशी लुटेरों के लिए खैबर का मार्ग ही खोल दिया और भारत में मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकड़ों बरस बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलम्बस को अमेरिका भेजा और पाताल का पता लगवाया, और वास्कोडीगामा से उत्तमाशा अन्तरीप पार कराया और खैबर की राह से लाखों तातारियों, पठानों और मुगलों ने भारत पर आक्रमण कराया।

२. मुसलिम चढ़ाई के आरंभ तक

विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष अनेक राज्यों में बँटा था उनका राज्य प्रजा के लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हलका देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था क्योंकि खेती के लिए धरती बहुत थी और प्रजा को किसी तरह का कष्ट न था। राजा लोग आपस में लड़ते थे, एक दूसरे पर विजय कर लेते थे परन्तु प्रजा को वैरी राजा से भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शान्ति से हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके

पड़ोस में घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले खेती को कोई हानि न पहुँचाते थे। व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेश में बेचने को लेजाता था। युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नहीं छूते थे। सिन्ध के सिवाय और कहीं भी अहिन्दू राज न था। कन्नौज, मालखेड़ और मुंगेर ये तीन बड़े-बड़े साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतों पर मराठों या मराठों पर बंगालियों का राज हो। जहाँ कहीं भारत के और किसी प्रान्त का दूसरे प्रान्त पर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना थोड़ा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था। किसानों की रक्षा और शान्त जीवन ने उन्हें राज के मामलों से इतना निश्चिन्त कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य में चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। इस कारण देश में क्रान्ति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड़ गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरूनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा से ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतों से, मजूरों से, कारीगरों से, व्यापारियों से सबसे उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणों से कर नहीं लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहाँ के गाँवों का जैसा संस्थान था, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कुछ अधिक विस्तार से दिया है। हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं:—

१. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० १५३—१५५।

"शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ था। मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य संस्था ग्राम-संस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में ग्राम संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसीसे संबंध रहता था। ये ग्राम संस्थायें एक छोटा सा प्रजातंत्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ होती थीं। इनके अतिरिक्त जिलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियों की सभा व्यापारादि का प्रबंध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १४० गाँवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े-बड़े भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने हुए हैं। साधारण गाँवों में बड़े-बड़े वटवृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की सम्भावना होने पर ग्राम-सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मंदिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन

जी जाती थी। ऐसी ज़मीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या ख़रीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज़ अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्टरों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

"चोल राजा परांतक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यों की योग्यता अयोग्यता सम्बन्धी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय-व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवार के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था।

"इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह था कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े-बड़े परिवर्तन हो जायँ, परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था या जन साधारण को परतंत्रता का कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए यह कठिन भी है कि वे गाँवों तक की सब बातों की तरफ़ ध्यान रख सकें।

भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसी ने पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।"

मुग़ल बादशाह अपने पतनकाल में जब भूमिकर अत्यधिक और बेदर्दी, कड़ाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पंचायतें अत्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकीं और अन्ततः टूट गईं। पटवारी जमींदार, तहसीलदार उसके शहने, सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुंशी, मुहर्रिर, दलाल, सबके सब किसान को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

: ७ :

परमाध्यमिक काल

१. मुग़लों से पहले

तारीख फ़ीरोजशाही में बरनी ने अलाउद्दीन खिलजी के राज में उन भावों का विवरण दिया है, जिन पर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये हैं उनको आजकल के संयुक्तप्रान्त के माने हुए तौल में नीचे दिया जाता है।

गेहूँ	एक पैसे में	दो सेर
जौ	,,	साढ़े तीन सेर
धान	,,	तीन सेर
उर्दी माश	,,	तीन सेर
चने की दाल	,,	तीन सेर
मोठ	,,	एक पसेरी
खांड	,,	साढ़े चार छटांक
गुड़	,,	अठारह छटांक
मक्खन	,,	साढ़े चौदह छटांक
तिल्ली का तेल	,,	साढ़े सत्रह छटांक
नमक	,,	नौ सेर

यह भाव बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर हो गये थे। कोई एक धेला भी नहीं घढ़ा सकता था। यह इतना सस्ता है

कि जल्दी विश्वास नहीं होता; पर उस समय खाने-पीने की सब चीजें इतनी सस्ती थीं कि इस भाव से लोग सन्तुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। यह इतने ऊँचे भाव थे कि सूखे के समय में भी दिल्ली में गल्ला भरा रहता था। भाव महँगा करने के लिए गल्ले की बिक्री रोक लेना या नाज को जमाकर रखना घोर अपराध था जिसके लिए बड़ा दण्ड मिलता था। किसानों को अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पड़ता था। अपने खर्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहाँ पैदा होता था वहीं किसानों को बेच देना पड़ता था। कपड़े, खाँड, शकर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाज़ारों से ठहरा दिये जाते थे। सब व्यौपारियों को चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पड़ता था। व्यापारी लोग उसी बाजार में अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आस-पास अत्यन्त महंगा नहीं बेच सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाज़ार क़ायदे कानून के अन्दर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मण्डी जिस किसी को क़ायदे के ख़िलाफ़ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये में और बकरी दस-बारह या चौदह पैसों में मिल जाती थी। कोई दुकान पर जो कम तौलता था तो वज़न में जो कमी होती थी, उसके चूतड़ों का माँस काटकर पूरी की जाती थी। जो दुकानदार ज़रा भी गड़बड़ करता पाया जाता था, लात मारकर बाजार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये हैं। (१) बाज़ार के कायदों की सख्त पाबन्दी (२) रोकड़ों का कड़ाई से उगाहा जाना। (३) लोगों में सिक्कों का बहुत कम प्रचार (४) कर्मचारियों की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फ़ीरोज़शाह के समय में कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का दहियक अर्थात पैदावार का दसवाँ भाग लिया जाता था। खाने पहनने की चीज़ें इतनी सस्ती थीं कि अकाल के दिनों में भी लोग सहज में विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानों की कमी से खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफ़ीफ़ ने नीचे लिखे भाव दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	पौने दो सेर
जौ	”	साढ़े तीन ”
और अनाज	”	” ” ”
दाल	”	” ” ”
घी	”	पौने तीन छटांक
चीनी	”	ढाई ”

कहते हैं कि उस समय बिना खेती के धरती का एक टुकड़ा नहीं बचा था।

मध्यभारत में बहमनी राज्यों के समय में दशा कुछ बुरी न थी। इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीन काल से बराबर चला आता था उस समय गाँव-गाँव अपना स्वतन्त्र शासन रखते थे; हरेक गाँव में पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तर भारत में मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत में अयगर कहलाता था। मुखिया या अयगरों को या तो पंचायत की ओर से खेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अंश दे देते थे। यह अयगर या मुखिया पंचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे। अमन और शान्ति

रखते थे। इन्हीं लोगों के द्वारा राजा और किसान के बीच सम्बन्ध बना रहता था। जान पड़ता है कि यही मुखिया या अयगर कालान्तर पाकर जमींदार बन गये। उस समय लगान जरूर बढ़ गया था परंतु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाब से वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता। लगान के सिवाय पचासों तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहों ने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरों से अधिक था। चाहे इन सब उपायों से राज्य की आय बहुत बढ़ जाती रही हो परन्तु पूरा महसूल वसूल होकर शाही खज़ाने तक पहुँचने में सन्देह है। यह बात सचाई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों में मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर ख़याल रखा करता था, तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा। आज-कल के मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भाँति-भाँति के 'आवनों' का अभी किसीने सपना भी नहीं देखा था। लोगों को चुंगी के रूप में नाज, फल, तरकारी, तेलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पड़ता था। शहर में आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूल से बच नहीं सकते थे।

शुरू-शुरू में जब मुसलमानों ने भारत पर चढ़ाई की तो यहाँ से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहों के विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बन्दोबस्त की ओर ध्यान नहीं देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबन ने किया। उसने ठगों और लुटेरों से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानों के राज में कहीं-कहीं किसानों की दशा बिगड़

गई थी। परन्तु अब किसान शान्ति से खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश में बिना लुटे ले जाने लगे। फ़ीरोज़शाह के समय में जब घोर काल पड़ा तो दिल्ली में अनाज तीन पैसे सेर तक[1] चढ़ गया। अलाउद्दीन के समय में शाही भण्डारों और खत्तों में अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय में सस्ता बिकता था। परन्तु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गये और चीज़ें मनमाने भाव पर बिकने लगीं। मुहम्मद तुग़लक के समय में नक़ली सिक्कों ने बहुत नुक़सान पहुँचाया। क़ोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस में सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानों को बाँटे गये। बादशाह ने शाही खत्तों से नाज निकलवाकर बँटवाया और फ़क़ीहों और क़ाजियों को हुक्म हुआ कि मुहताजों की फ़ेहरिस्त बनावें। मुहर्रिरों के साथ क़ाज़ी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल-पीड़ितों को आदमी पीछे तीन पाव अनाज बाँटते थे। बड़ी-बड़ी खानक़ाहें मदद बाँट रही थीं और क़ुतुबुद्दीन की खानक़ाह में जिसमें चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढ़ावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारखाने में काम करते थे और सब तरह की चीजें तैयार की जाती थीं। वासफ़ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में गुजरात एक बड़ा अमीर प्रांत था जिसकी आबादी बनी थी। इसमें सात हज़ार

१. आजकल अच्छी फसलों पर जो भाव होता है उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चौगुना सस्ता था। अनाज की भी आज कमी नहीं है, पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है। परन्तु किसान के पास पैसे कहाँ हैं?

गाँव और कस्बे थे और लोग धन सम्पत्ति में रँज-पुँजे थे। खेती से पैदावार बड़ी अच्छी होती थी। अंगूरों की दो फसल हुआ करती थी। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखायें झाड़ की तरह फैल जाया करती थीं और एक बार के लगाने में वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की ढोंड़ियाँ दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत में फैली हुई थी और कपास के पेड़ छः-छः हाथ ऊँचे होते थे, और बीस-बीस बरस तक कपास होती थीं। मिर्चें, अदरक और नील बहुतायत से होती थीं। लाल और नीले चमड़े की चटाइयाँ बनती थीं जिसमें कि चाँदी और सोने के काम के पक्षी और पशुओं के चित्र कढ़े हुए होते थे। मारकोपोलो ने यहाँ के निवासियों को सुखी और समृद्ध पाया। व्यापार में कुशल और कारीगरी में दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी में बंगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय में वहाँ चीजें अत्यन्त सस्ती थीं और बहुत थोड़ी आमदनी का आदमी बड़े ऐश आराम से गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत में सम्पत्ति और समृद्धि बढ़ी हुई थी। दिल्ली और आसपास के प्रांतों की आमदनी सात करोड़ के लगभग थी और अकेले दुआबे की आमदनी पचासी लाख थी। चीजें इतनी सस्ती थीं कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फ़ीरोज़ाबाद तक जाने के लिए गाड़ी में एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पड़ते थे। एक खच्चर किराये पर कराने के लिए तीन आने देने पड़ते थे। छः आने में किराये का एक घोड़ा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी।

काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चाँदी की बहुतायत थी, हर औरत गहनों से लदी हुई थी, और कोई घर ऐसा न था जिनमें बड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियाँ और कोच न होते।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगड़ने लगी। व्यापार और खेती दोनों की दशा कुछ उतार पर हुई। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वांगहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल में चावल की दो फसलें होती हैं और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दालें, ज्वार, बाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भाँति-भाँति की साग-सब्जी बंगाल में बहुतायत से होती है। केला और बहुत से फल बहुतायत से होते हैं। इस देश में चाय नहीं होती और मेहमानों को चाय के बदले पान दिया जाता है। नारियल, चावल, ताड़ आदि से शराब बनती है और बाजार में बिकती है। इस देश में पाँच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते हैं। रेशमी रूमाल और टोपियाँ जिन पर सोने का काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पात के सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी कैंचियाँ सभी तरह की चीजें इस देश में तैयार होती हैं। एक तरह का सफेद कागज भी एक पेड़ की छाल से बनता है जो हरिन की खाल की तरह चिकना और चमकदार होता है।

१. धन की बहुतायत थी। सिक्कों की बहुतायत न थी। चाँदी सोने के गहने बनते थे। यह बहुमूल्य धातुयें उचित रीति पर कला के काम में आती थीं। आज इस दरिद्र देश में जब आदमी दानों को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे। परन्तु गहनों का जहाँ थोड़ा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीन कला की छाया समझनी चाहिए।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हज़ार बरसों के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समय समझा जाता है। यह समय आज से केवल साढ़े तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते हैं। हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मान लें तो आज कल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते हैं। दूध का भाव ग्यारह गुना बढ़ा हुआ है। घी सोलह गुना ज़्यादा मँहगा है। परन्तु मज़ूरी का भाव कितना बढ़ा? पहले एक रुपया रोज़ में बीस मज़ूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरों में ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ा रेट दस रुपये में बीस कुली है। इस तरह चीज़ों का भाव जितना ऊँचा चढ़ गया है उतनी ऊँची मज़ूरी नहीं चढ़ी। होशियार से होशियार बढ़ई सवा रुपये रोज़ में मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज़ में मिलता था। बढ़ई की मज़ूरी साढ़े सात गुनी से ज़्यादा नहीं बढ़ी। यह नतीजा निकालने में किसी अर्थशास्त्री को संकोच नहीं हो सकता कि उस समय से इस समय मँहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मज़ूरी उसके मुक़ाबले में बहुत कम बढ़ी है। इससे मज़ूरों की दशा उस समय के मुक़ाबले में बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल में अधिकांश पैदावार का ही एक अंश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतने का निश्चित अंश ही देना पड़ा। आज तो ऐसा नहीं है। आज देने की रक़म बन्दोबस्त के समय में अन्धाधुन्ध बढ़ जाती है; फिर चाहे सूखा पड़े या चाहे टिड्डी लग जायँ या बाढ़ बहा लेजाय, पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पड़ता है। किसी खेत से, जहाँ बीस मन अनाज होता था वहाँ दो मन लगान में दे दिया जाता था। उसी खेत में जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही मन भर दिया जाता था और इतने

ही में किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपए देने हैं तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले इस समय किसान की हालत बिलकुल रद्दी है।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहों की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता उससे भी किसानों की बिलकुल बरबादी है।

२. मुग़लों का समय

अकबर के समय में खेती और किसानों की दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहों के समय में थी। अलाउद्दीन के समय में खाने-पीने, पहिनने की चीज़ों के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी बड़ी कड़ाई से होती थी। परन्तु अकबर के समय में वह कड़ाई नहीं थी, तो भी सभी चीज़ें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय के लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय में जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने-अकबरी में मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते हैं और जो तौल का प्रमाण है वह तब से बहुत भिन्न है। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के हिसाब दिये हैं—

गेहूँ	एक पैसे में	तेईस छटांक
जौ	,,	पैंतीस ,,
उत्तम से उत्तम चावल	,,	ढाई ,,

अत्यन्त मामूली चावल	,,	चौदह	,,
मूंग की दाल	,,	साढ़े पंद्रह	,,
मांश की दाल	,,	सत्रह	,,
मोठ की दाल	,,	तेईस	,,
चना	,,	साढ़े सोलह	,,
ज्वार	,,	अट्ठाइस	,,
सफेद चीनी	,,	सवा दो	,,
शक्कर	,,	पांच	,,
घी	,,	पौने तीन	,,
तिल का तेल	,,	साढ़े तीन	,,
नमक	,,	सत्तर	,,
दूध	,,	ग्यारह	,,

इस तरह गेहूँ रुपये में सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये में साढ़े दस सेर पड़ता था। दूध का भाव एक रुपये में नौ पसेरी था। और सब तरह की चीज़ें भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड़ रुपये डेढ़ रुपये में मिल जाती थी। भेड़ का मांस एक रुपये में अठारह सेर मिलता था। मजूरी भी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज में बीस मजूर काम कर सकते थे। बड़ा ही होशियार बढ़ई ग्यारह पैसे रोज में काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का खर्च साढ़े तीन आने से ज्यादा नहीं था। उस समय का अमीर से अमीर आदमी अपने भोजन में आठ आने महीने से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता था। शहर के रहनेवाले पाँच आदमियों के एक अमीर परिवार का

सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नहीं होता था। यह शहर के रहनेवालों का खर्च हुआ। देहात के रहनेवालों को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातों के क्या कहने हैं।

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत में फैला हुआ था और अब इन कामों में मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे में और फतहपुर-सीकरी में बारीक कपड़ों के सिवाय शतरंजी, कालीनें और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दों के कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरात में पाटन और खान देश में बुरहान-पुर और ढाके में सुनारगाँव सूती कपड़ो के लिए मशहूर थे। इन कपड़ों का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का खास बाजार बनारस था। पटने में भी कपास, खद्दर, खाँड, अफ़ीम आदि का बड़ा भारी व्यापार था। फैज़ाबाद जिले का टाँडा रुई के माल का बहुत बड़ा बाज़ार था। गाँव के उद्योग-धन्धे जैसे युगों से चले आते थे अकबर के समय में भी उसी तरह से बराबर हो रहे थे। उसमें किसी तरह की कमी नहीं आई थी। गाँव और किसान और उसके जान-माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पञ्चायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बन्दोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ में नहीं आता कि हम किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझें। आज भी लुटेरों से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यंत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है

और उसे रक्तहीन छोड़ देता है। किसान की क्या रक्षा हुई? इस यंत्र से उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

जहाँगीर और शाहजहाँ तो अकवर के पद चिन्ह पर चलते थे। उनके समय में गावों की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा वैसी ही रही जैसी अकवर के समय में। औरंगजेब के समय में अवनति का कुछ आरम्भ हुआ। उसके वाद के वादशाहों ने तो लुटिया ही डुवोई।

३. औरंगजेब काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोजगार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक वोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा है कि संवत १६४७ में मलवार के समुद्रतट पर अंग्रेजी वेड़े ने हिन्दुस्तानी जहाजों की अन्धाधुन्ध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। वंगाल में जाव चानाक नाम के अफ़सर के अधीन, जो कि हुगली में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सवसे वड़ा कारखानेदार था, अंग्रेज सेना के भाग्य ने वहुत से पलटे खाये। वम्वई में कम्पनी के गवर्नर सर जान चाइल्ड ने अपने नासमझी के व्यवहार से सम्वत १७४७ के आषाढ़ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कम्पनी के लिए घातक ठहरा क्योंकि इसमें कम्पनी के साठ लाख से अधिक रुपये का नुक़सान हुआ। उनके साथ जो रिआयतें की गई थीं वे छिन गईं और भारतीयों और मुगलों के वीच से उनकी साख उठ गई। सूरत के सूवेदार सैदी याकूव ने वम्वई पर दखल कर लिया, कम्पनी के कारखानेदारों को कैद कर लिया और उनकी गर्दनों में जंजीर वँधवाकर सड़कों पर फिराया।

इस युद्ध में हार जाने के कारण अंग्रेजों को संधि की प्रार्थना करनी पड़ी और उस समय के सम्राट औरंगजेब से इस प्रकार क्षमा माँगनी पड़ी। उन्होंने अंग्रेज राजदूत के नाम से अपने दो कारखानेदारों को दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वेल्डन था और दूसरा अब्राह्मनवार नाम का यहूदी था। दोनों औरंगजेब के हुजूर में लाये गये। दूतों के लिए यह एक बिलकुल नया ढंग था। उनके दोनों हाथ बँधे हुए थे और उनको सम्राट के सामने साष्टांग दण्डवत् करना पड़ा। सम्राट ने बड़ी लानत मलामत की और तब पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उन्होंने बड़ी दीनता से अपने कसूरों को कबूल किया और माफ़ी माँगी। फिर यह प्रार्थना की कि जो फ़रमान हुजूर से ज़ब्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदी को सेना सहित बम्बई के टापू से लौटा लिया जाय।

औरंगजेब बड़ा दयालु और बुद्धिमान राजा था। उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और इस शर्त पर माफ़ कर दिया कि नौ महीने के अन्दर गवर्नर चाइल्ड हिन्दुस्तान छोड़ दे और फिर न लौटे। फरमान इस शर्त के ऊपर जारी किया गया कि जिस रिआया को लूटा गया है, जिनसे कर्ज लिया गया है और जिनका जो कुछ अंग्रेजों से नुक़सान हुआ है उन सबको धन देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय। मुग़ल सम्राट की कृपा से मामला तय हो गया और बङ्गाल में कम्पनी के एजेण्ट जाबचानाक ने अंग्रेजों को फिर से अपने कारखानों में आने के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके बाद कम्पनी ने भारत के कई भागों में अपने कारखाने खोल लिये। ये कारखाने अधिकांश कपड़े के थे। कपड़े का रोज़गार औरंगजेब के समय में बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उत्तर भारत में भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक

गाँव-गाँव में चरखा कतता था और खद्दर बुना जाता था। मुगलों के राज के अन्त तक और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य के आरम्भ तक बाफ़ता के लिए पटना, टाँडा, चटगाँव, इलाहाबाद, खैराबाद, बीरभूम और लखीमपुर मशहूर थे। इन स्थानों के सिवाय खासे के लिए हरियल, शान्तिपुर, मऊ और लखनऊ का नाम था। चन्दरकोना, शान्तिपुर और हरीपाल की डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी। महमुदी के लिए टाँडा, इलाहाबाद, खैराबाद, जोहाना और लखनऊ का नाम था। ढाका, पटना, शांतिपुर, मेदनीपुर, गाजीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मशहूर थे। सन्नों के लिए और तरींदम के लिए इन सब स्थानों के सिवाय हरीपाल, बुढ़ावल, कासिमाबाद, शान्तिपुर, बालासोर और कोहाना खास जगह समझी जाती थी। ये सब इन कपड़ों के बाजारों के नाम हैं। इन बाजारों के आसपास के गाँवों में बड़े जोरों से इन कपड़ों का नाम होता था। इन गाँवों की संख्या अनुमान से कई लाख की होगी। क्योंकि उस समय विदेशों में यहाँ के बने कपड़े जाया करते थे। सम्वत् १८६२ के लगभग बंगाल के व्यापार के सम्बन्ध में डाक्टर मिलबर्न के Oriental Commerce (पूर्वी वाणिज्य) की जिल्दों से बड़े काम की गवाही मिलती है। उत्तरी भारत भर में ये कपड़े बड़ी मात्रा में तैयार होते थे। इसमें ये अंक मिलते हैं :—

सम्वत् १८६२ के लिए

बंगाल का वाणिज्य किस स्थान से था।	आयात रुपयों में : जिसमें प्रधानतः सोना, चाँदी आदि कोष शामिल था।	निर्यात कपड़े के थानों का
१ लंदन	६७७२२)	३३१५८२
२ डेनमार्क	२१३५)	३३७६३२

३ लिसयन		११९३२१३
४ अमेरिका (संयुक्तराज्य)	२५०६६)	४७६२१३२
५ लंका		१०३६४४
६ सुमात्रा		८५०८६
७ कारोमण्डल का किनारा	११५२६०)	(विशेषतःमाल) ४०१७६२
८ खलीज, फारस और अरब		८४५७८८
९ पेगू		८२२५४
१० पूलोपिनँग पूर्ववर्ती देश		८१६६१२
११ बटेविया		६१५६८६
१२ चीन	१८२१२७)	३७६४६६

नोट—चीन को २८८४६१६) की रुई भेजी गई।

ऊपर लिखी सारिणी में जो वाहरी व्यापार का प्रमाण मिलता है वह इतना तो स्पष्ट कर देता है कि भारत के गाँवों में कताई-बुनाई का काम बड़े ज़ोरों से चल रहा था। दक्षिण भारत में भी इस काम में किसी तरह की ढिलाई न थी। दक्षिण भारत के बने कपड़े मछली-पट्टम के बन्दरगाह से बाहर के देशों में जाया करते थे। दक्षिण में बुरहानपुर में कपड़ो के शाही कारखाने थे और मछलीपट्टम में और उसके आसपास के अनगिनत गाँवों में भाँति-भाँति की छींटें तैयार होती थीं और संसार में भारत का नाम फैलाती थीं। गोलकुण्डा के राज में खान से हीरे, जवाहिर की खुदाई होती थी और गाँव-गाँव में इस तरह के कारबार थे। राजधानी हैदराबाद के पास के दो गाँव निर्मल और इन्दूर में लोहे का कारबार इस दर्जे को पहुँचा हुआ था।

कि निर्मली और इन्दूरी तलवारें, बरछे और खंजर यहीं से सारे भारत में जाते थे। और दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यहीं से लोहा जाता था और शमशीर हिन्द का नाम मशहूर करता था। हीरे और सोने के लिए गोलकुण्डा का राज संसार में प्रसिद्ध था। और मछलीपट्टम के बन्दरगाह से भारत के जहाज संसार के समुद्रों में आते-जाते थे। खेती उसी तरह वहाँ भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत में। और जंगलों की पैदावार उसी तरह धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत में जहाँतक किसानों का सम्बंध है निरन्तर शान्ति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कड़ाई करनेवाले हाकिमों की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहाँ ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी में ही उपदेश किया कि किसानों को और सेना को खुश रखना। औरंगज़ेब ने अपने लड़कों को रैयत को खुश करने के लिए बारम्बार उपदेश किया है। इन बादशाहों का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरंगजेब की बादशाहत के ज़माने में प्रजा को कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरंगज़ेब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओं पर उसकी कड़ी निगाह थी। उसने सारी हिन्दू प्रजा पर ज़ज़िया लगाया और मुसलमानों का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओं को देने पड़ते थे, मुसलमानों को नहीं देने पड़ते थे। अनेक अपराधों में मुसलमान छोड़ दिया जाता था क्योंकि काफिर हिन्दुओं के विरुद्ध अपराध करने में मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान साल के साल मेहनत करता था परन्तु लड़ाई के कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे

लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। सम्वत १७१५ और १७१६ के लगभग इन्हीं कारणों से अनाज मँहगा बिकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटों पर, पहाड़ी गुजरगाहों पर और सरहदों पर जो माल गुजरता था उस पर राहदारी का माल का दशमांश महसूल देना पड़ता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कड़ाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानों के ऊपर सारा बोझ आ पड़ता था। औरंगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तब कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से बिकने लगा।

इन सब बातों के होते हुए भी मुगलों के साम्राज्य के अन्त में भी गल्ले का भाव प्रायः अकबर के समय के ही लगभग रहा।

: ८ :

कम्पनी का कठोर राज्य

ईस्ट इंडिया कम्पनी संवत् १६५७ में ७० हज़ार पौंड की पूंजी के साथ भारत से रोज़गार करने के लिए क़ायम हुई थी। उस समय इंगलैण्ड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोज़गार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इंग्लैण्ड का कोई बाशिन्दा भारत के साथ रोज़गार नहीं कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर बीसवें बरस बदला जाता था। भारत में अशान्ति और बदइन्तज़ामी होने से, कम्पनी भारत की मालिक बन गई, किन्तु इंग्लैण्ड में उसका वही पहला ही पद बना रहा। उसके हुक्मनामे का हर बीसवें वर्ष बदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी तक भारत के गाँव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथ की कलाओं में भी कुशल थे। भारत के करघों से बने हुए कपड़े एशिया और यूरोप के बाज़ारों को भरे हुए थे। परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओं ने दबा लिया। युगों के ठोस उद्योग और रोज़-गार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपड़ों के सबसे बड़े मोहताज की दशा को पहुँचा दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से, भारत का दरजा सबसे बड़े बेचनेवाले से, सबसे बड़ा ख़रीदनेवाला हो गया। बात यह थी कि पार्लमेण्ट और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने व्यापार में हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होंने भारतवर्ष में कार-

खाने खोले, और उन कारखानों में यहाँ के दस्तकारों को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होंने जहाँतक बन पड़ा, देश के भारतीय कारखानों को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत में वहाँ के कारीगरों ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में, विलायत की दस्तकारियों को बढ़ाने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकनेवाले क़ानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायत की दस्तकारियों की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहाँ के कारखानों तथा करघों के लिये कच्चा माल तैय्यार करनेवाला एक देश ही रह जाय।

इस नीति का पालन सख्ती से किया गया और इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई। भारत में रहनेवाले गोरे अधिकारियों को कम्पनी के कारखानों में काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारों को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहों के गाँवों तथा उनकी जातियों के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेज़िडेण्टों को बहुत बढ़े-चढ़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपड़ों का विलायत जाना रोका गया। अंग्रेज़ी चीज़ें बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारत में आने दी गईं।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दों में, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारों से अपने मुक़ाबलेवाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योंकि दोनों को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहाँ के

लाखों दस्तकारों की रोजी मारी गई और यहाँ की सम्पत्ति के उप-जाने का एक द्वार ही बन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश कालीन इतिहास में इस दुःखद घटना का वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यों हैं। और हमें खेती का ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप में भाप के बल से चलनेवाले करघों के चल पड़ने से हमारे कारीगर बरबाद हो गये और जब हमारे यहाँ कल कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगर पर कर बैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुक़ाबले के भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलनेवाली नई कलों का गला घोंटता रहा है। जिन लाखों करोड़ों दस्तकारों की रोजी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गाँवों में मजूरी और खेती आदि धंधों पर टूट पड़े. जिसे जो रोज़गार पेट पालने को मिला कर लिया। बेचारे लाचार होकर भंगी डोम तक का काम करने लगे। ज़मीन बढ़ी नहीं, खेतिहर बढ़ गये। पैदावार घट गई, खानेवाले बढ़ गये। हट्टे-कट्टे काम करने-वाले ज्यादा रोटी के लालच से विदेशों में काम करने चले गये, गाँव उजड़ गये। संसार के अनेक निर्जन टापू गुलामों से बस गये। आज अब दशा यह है कि हमारे देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक ही द्वार खेती रह गई है और आज हमारे देश के हर पाँच आदमी में चार तो खेती पर ही दिन काटते हैं। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमि कर वसूल किया जाता है वह एक तो बहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रान्तों में तो वह इतना अनिश्चित है कि उसमें खेती की तरक्की करने का कभी किसी को हौसला नहीं हो सकता। कर बढ़ता ही जाता है।

इंगलिस्तान में संवत् १८५५ तक भूमिकर लगान के सैकड़ा पीछे ५ और २० के बीच में था। उस समय के प्रधान मंत्री पिट ने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ संवत १८५० और १८७६ के बीच में बंगाल भूमिकर लगान का सैकड़ा पीछे ९० और उत्तरी भारत में सैकड़ा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने में अंग्रेजी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहों की ही नक़ल की थी। परन्तु इन दोनों में यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना माँगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये। परन्तु अंग्रेज सरकार जो कुछ माँगती रही है उसे कड़ाई के साथ वसूल भी करती आई है। बंगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज के आखिरी साल संवत १८२१ में सवा करोड़ से कम ही रुपये मालगुजारी वसूल की थी। बंगाल से अंग्रेजी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड़ २ लाख रुपये साल की मालगुजारी वसूल करने लगी। संवत् १८५६ में अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और जिले अंग्रेजी सरकार को दिये, जिनसे वह २ करोड़ २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी माँगता था। तीन वर्ष के भीतर अंग्रेजी सरकार ने इनकी मालगुजारी बढ़ाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपये से भी अधिक करदी। मद्रास में पहले पहल ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमिकर नियत किया। बम्बई में संवत् १८७४ में मराठों से जीती हुई भूमि की मालगुजारी १ करोड़ २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षों के अंग्रेजी शासन के पीछे वह बढ़ाकर सवा दो करोड़ रुपये कर दी गई और तब से वह लगातार बढ़ती ही जा रही है। पादरी हैवरन ने समस्त भारत में यात्रा करने और सब अंग्रेजी तथा देशी राज्यों का निरीक्षण करने के पीछे संवत् १८८३ में लिखा था कि "कोई

देशी शासक इतना भूमिकर नहीं माँगता जितना हम माँगते हैं।'
संवत १८८७ में कर्नल ब्रिग्ज़ ने लिखा था कि "भारत का वर्तमान भूमिकर प्रायः समस्त लगान के बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप में किसी भी शासक के समय कभी नहीं सुना गया।"[1]

बंगाल और उत्तरी भारत के मनुष्यों के लिए अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक समय के इस भारी भूमिकर का बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बंगाल में भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिए कृषि की वृद्धि के साथ-साथ उसमें वृद्धि नहीं हो पाई है। अब वह लगान का केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसी में कुछ अन्य कर भी सम्मिलित हैं।) उत्तरी भारत में भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परन्तु सम्वत १९१२ में वह घटाकर लगान का ५० प्रति सैकड़ा कर दिया गया। परन्तु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गये, जिनके कारण भूमिकर बढ़कर लगान का ६० प्रति सैकड़ा हो गया। ज़मीन्दारों ने अपना सारा बोझ इज़ाफ़ा लगान करके दरिद्र किसानों पर डाल दिया। अन्त में सब तरह से किसानों की ही बरबादी हुई।

मद्रास और बम्बई की अवस्था और भी खराब है। वहाँ कृषक लोग सरकार को भूमिकर सीधे अदा करते हैं। उनके तथा सरकार के बीच कोई ज़मींदार मालगुज़ार या ठेकेदार नहीं है। सम्वत १९२१ में सरकार ने आर्थिक लगान का आधा मालगुज़ारी के स्वरूप में वसूल करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है, और बेचारे किसानों को

१. श्री रमेशचन्द्रदत्त के प्रसिद्ध ग्रंथ "ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास" की भूमिका से संकलित

अपने मेहनत मजदूरी और औजारों, चौपायों इत्यादि में लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसवें बरस नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका लगान किस कारण से बढ़ाया जा रहा है। उसके सामने बस दो रास्ते रह जाते हैं, या तो वह बढ़े हुए लगान को मान ले या अपने बाप दादों के खेत को छोड़कर भूखों मरे। लगान की यह आये दिन की घट बढ़ खेती को बढ़ने नहीं देती। किसानों को कुछ बचत भी नहीं होने देती और उन्हें दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है।

भारत में भूमिकर केवल भारी और डावाँडोल ही नहीं है, बल्कि जिन सिद्धान्तों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग से निराले हैं। और देशों की सरकार जनता का धन बढ़ाने में सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रँजी-पुँजी देखना चाहती है और फिर उसकी आय का बहुत थोड़ा अंश उसकी रक्षा के लिए माँगती है। भारत की सरकार कर लगाकर धन के इकट्ठा होने में बाधा डालती है। किसानों की आय को रोकती है और लगभग हर नये बन्दोबस्त के समय अपनी मालगुजारी बढ़ाकर किसानों को सदा ही दरिद्र रखती है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्तराज्य आदि देशों में सरकार अपनी प्रजा की आय बढ़ाती है, उसकी वस्तुओं की खपत के लिए नये-नये बाजार ढूँढती है, भरसक बाजारों के ऊपर अधिकार जमाने की चढ़ा ऊपरी में महासमर तक हो जाते हैं, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है उनकी भलाई के लिए मर मिटती है, और उनके बढ़ते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्यवाली बनती है। भारत में अंग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियों के चलाने में सहायता दी; और न उसकी पुरानी दस्तकारियों को ही नया जीवन दिया है,

उलटे वह हर बन्दोबस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई में लोग हर नये बन्दोबस्त को अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते हैं, जिसमें सरकार और प्रजा के बीच परस्पर स्वार्थों की छीना झपटी होती रहती है। और इस लड़ाई का निर्णय करने के लिये कानून में कोई ठीक विधान या सीमा नहीं है। माल के हाकिमों का फैसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढ़ती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य्य मेघ बनाता तो है परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप में हजार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।[1] कवि ने अपने यहाँ कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हजारों गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारतभूमि से खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशों में ही बरसता और विदेशों को ही उपजाऊ बनाता है। हरेक देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वहीं खर्च किया जाय। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के बुरे से बुरे हाकिमों के समय में भी यही बात थी। पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेना में खर्च करते थे पर उससे तो यहीं के बहुत से बड़े-बड़े घरानों का और लाखों परिवारों का पालन

१. प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥ रघुवंश। १। १८

रवि जैसे हजारगुना बरसा देने के लिए रस लेता है, वह (राजा) प्रजाओं का धन बढ़ाने के लिए ही उनसे कर लेता था।

होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने में या सुख और भोग-विलास की चीज़ों में या दिखावटी ठाट-बाट में धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारों के हाथ में जाता था और उनका हौसला बढ़ाता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काज़ी और उनके छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताव करते थे, और अनेकों मस्जिद, मन्दिर, सड़कें, नहरें और तालाब उनकी उदारता के गवाह हैं। वे धन को बेहिसाब उड़ाते भी थे तो वह उड़कर भी भारत के ही वायुमण्डल में फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था। बुद्धिमान और मूर्ख दोनों तरह के शासकों के समय में भी कर के रूप में वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढ़ाता था। पर भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बड़ी जागीर या बड़ा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप में जमा होता था। भारत की सरकार में मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देशवालों को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुयें मोल लेती थी और फिर उन्हें अपने नीजी लाभ के लिए योरप में ले जाकर बेचती थी। व्यापार में लगी हुई अपनी पूँजी का भारी ब्याज वह भारत से कड़ाई के साथ वसूल करती थी। सारांश यह की भारत में भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमें से बहुत जरूरी बन्दोबस्ती ख़र्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी न किसी तरह योरप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्त्तमान काल तक

१. भारत का रक्त चूसा जाना

जब सम्वत् १८९४ में अंग्रेजी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी करली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप में अब भी बिक रहे थे, और यहाँ के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहाँ कड़ा महसूल लगता था। *पार्लमेण्ट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जाँच की कि ब्रिटिश* करघों के लिए भारत में रुई कैसे उपजाई जा सकती है, यह न पूछा कि भारतीय करघों की बढ़ती कैसे कराई जाय। लगातार डेढ़ सदी के लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है, कि ब्रिटिश कारखानों की बढ़ती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरों की भलाई का कोई खयाल नहीं रहा। भारत की बनी चीजें जो जहाजों में भर-भर कर विलायत भेजी जाती थीं वह धीरे-धीरे सपने का धन होती गईं।

हम पिछले वर्षों में यह देख चुके, कि कम्पनी इस्तमरारी बन्दोबस्त और प्रान्तों में बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारत में उसने पहले लगान का सैकड़ा पीछे ८३ भाग मालगुजारी लगाई, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६६ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब संवत १९१२ में उसे लगान का आधा

कर दिया। सम्वत् १६२१ में यही लगान की आधी मालगुज़ारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। संसार के किसी सभ्य देश में खेती के मुनाफे के ऊपर आधों आध आय कर का लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी सन्तोष होता, तो भी बड़ी बात'।

सम्वत् १६१५ में कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेण्ट के अधिकार में आजाने पर भी भारत को लेने के देने ही पड़े। पार्लमेण्ट ने कम्पनी के हाथों से भारत की जागीर को खरीद कर अपने हाथ में कर लिया और इसी जागीर के मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था, वह भी भारत के मत्थे मढ़ा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढ़ने लगा। लड़ाई चाहे संसार में अंग्रेज़ों को कहीं भी लड़नी पड़ी तो किसी न किसी तरह बादरायण सम्बन्ध जोड़कर उसका खर्च भी भारत की ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफ़ा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीर को सहना पड़ा। इस तरह पार्लमेण्ट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनों के ऊपर कड़े से कड़ा महसूल लगने लगा।

सम्वत् १६३२ में स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत मंत्री थे। उन्होंने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट में इस प्रकार लिखा था—

"भारतीय राजस्व-पद्धति के बदलने की जहाँ तक गुँजाइश है, वहाँ तक इस बात की भारी ज़रूरत है, कि किसान को जितना देना पड़ता है उससे कुछ कम ही, कुल देश के राजस्व के नाते वह दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफ़ायत की नीति नहीं है कि राजस्व

की प्रायः सारी मात्रा उन देहातों से ही निकाली जाय, जहाँ पूंजी अत्यन्त महँगी है, और उन शहर के हिस्सों को छोड़ दिया जाय, जहाँ धन बेकार पड़ा हुआ है, और ऐशोआराम में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो बड़ी हानि पहुँचाई जाती है, क्योंकि वहाँ से मालगुज़ारी का इतना बड़ा अंश बदले में बिना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नश्तर उन हिस्सों में लगाना चाहिए, जिनमें लोहू जमा हो, कम से कम काफ़ी हो। उन अंगों में नहीं लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमज़ोर हो चुके हैं।"

लार्ड सैलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवें और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता है, और हर नये बन्दोबस्त पर मालगुज़ारी बढ़ती ही रहती है। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुज़ारी ली जाती है, परन्तु असल में तो बम्बई और मद्रास में इससे तो बढ़ी ही रहती है। मालगुज़ारी में और कई तरह के महसूल भी जोड़ दिये गये हैं, जिनको बढ़ाने में सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार में कौन ऐसा देश है जिसके धन को इस निठुरायी से चुसायी हो, तब भी उसकी खेती बर्बाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े में गुज़र करनेवाले होते हैं, परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गये हैं, खोखले हो गये हैं, और सदा दुर्भिक्ष और भूख की भयानक सूरत उनके द्वार पर खड़ी रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते हैं—

"कर के देने के नाम से भारत की सारी आमदनी का चौथाई हिस्सा हर साल इंगलिस्तान चला जाता है। और अगर उसके साथ

वह धन भी जोड़ लिया जाय जो यहाँ के विलायती अफ़सर हर साल अपने वेतन से बचाकर इंगलिस्तान भेजा करते हैं, तो यह रक़म तीस करोड़ से कहीं अधिक हो जाती है। संसार का सबसे धनी देश संसार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की बेहयाई करता है। आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगों से आदमी पीछे ७) माँगते हैं, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते हैं। यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारत के लोगों से अंग्रेज़ लोग लेते हैं, भारत को दरिद्र कर देता है। और इस तरह भारत में अंग्रेज़ों के व्यापार को भी हानि पहुँचती है। इस देने से अंग्रेज़ी व्यापार और व्यवसाय को कोई लाभ नहीं पहुँचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोहू की अटूट धारा बहती चली जाती है।"

यह बात बिलकुल सच है। सम्वत् १९५७ में भारत से माल-गुज़ारी की सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड़ रुपये हुई थी। घर के देने के नाम से साढ़े पचीस करोड़ उसी साल विलायत भेजे गये थे। यह तो साफ़ जाहिर है, कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक न एक ढंग से विलायत चली जाती है। विलायती अफ़सर अपनी तनख्वाह की बचत जो भेजते हैं, वह इससे अलग है। प्रजा से जो कर लिये जाते हैं, वह यदि देश में ही ख़र्च किये जाते, जैसा कि संसार के सब देशों में होता है, तो वह रक़म प्रजा में ही फैलती। पेशे, व्यवसाय और खेती को बढ़ाती और किसी न किसी रूप में प्रजा का ही धन बढ़ाती। देश के बाहर निकल जाने पर एक कौड़ी भी देश के काम में नहीं आती।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला। इतने समय में भारतवर्ष पर अँग्रेजों का फौलादी पंजा बराबर जकड़ता

गया। महसूल बढ़ते गये। करों का भार अन्त में देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पड़ता गया। नमक का महसूल दरिद्रों को अत्यन्त खला, परन्तु उसे बढ़ाने में हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने बाज़ार को भर दिया। देश के आदमियों की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से बची हुई घड़ियों में किसान खद्दर सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल में ६ महीने से लेकर ९ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहने लगे। पछाहीं रोज़गार की कठिन चढ़ा ऊपरी ने यहाँ के एक रोज़गार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु बनाना खानों की खुदाई, लोहे आदि की ढलाई के काम बन्द हो गये। नमक बनानेवाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो बिलकुल बे-रोज़गार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआँ खोदने का काम करते हैं। अधिकांश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्टी, बुनकर, कोरी, जुलाहों का रोजगार मारा गया। बढ़ई, लुहार आदि शिल्पी अपनी ऊँची कला भूल गये। सूत कातने की अत्यन्त प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरी से नष्ट हो गई। लोगों ने चरखे उठाकर घरों पर फेंक दिये, मचानों पर डाल दिये, या लकड़ी की जगह चूल्हों में लगा दिये। लाखों की गिनती में बुनकर आदि कारीगर जब बेकार हो गये, तो उनका जहाँ सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मजदूरी से ही पेट पालने लगे। गुजरात के हज़ारों बुनकर भङ्गी का काम करने लगे। हथियार बारूद आदि का बनाना एकदम बन्द हो गया। इधर पैसे इतने सस्ते कर दिये गये कि ज़रूरत की सारी चीज़ें अत्यन्त महँगी हो चलीं।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमी-बेशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों में भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलाई को कैसे समझ सकती थी। समझती भी तो कर क्या सकती थी; सरकार बारम्बार नया बन्दोबस्त करके मालगुजारी बराबर बढ़ाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पड़ने लगा। पहले उसको थोड़ा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पड़ता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने से दो शिकार मारे। एक तो अपनी-अपनी आमदनी बढ़ाई, और दूसरे किसानों में जो असंतोष फैलता उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया में फाँसे गये। अँग्रेजों ने पैसे को कुछ थोड़ा सस्ता कर दिया। किसानों ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे लगे पैसे जुटाने। जब पैसे इकठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगन्ध फुलेल और भाँति-भाँति की विदेशों की बनी शौकीनी चीजें उन्हीं पैसों के बलपर खरीदने लगे और दरिद्र किसान शौकीन रईसों की नक़ल करने में अपनी बड़ाई मानने लगे। जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नंगे पाँव लंगोटी बाँधे पढ़ने या काम करने जाने में संकोच नहीं करते थे, वही माँग काढ़ने, बाल सँवारने, फैशन बनाने और रईसों की-सी लम्बी ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौक़ीनी की चीजें विलायती चल गईं, जो अनाज से नहीं मिलती थीं। इनके लिए पैसों की बहुत

ज़रूरत पड़ी। फिर शादी, ब्याह, मूड़न छेदन की तरह गिरस्ती में आये दिन हौसले बढ़ने लगे, चढ़ा ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसे की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रुई सब तरह की ज़रूरी चीज़ें, जो अनाज देकर मिलती थीं, पैसे पर मिलने लगीं।

मुसलमानों के राज में किसान जो चाहता था, मालगुज़ारी में दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने में झंझट है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे में रहेंगे। इसलिए मालगुज़ारी में अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी ज़मींदार असामियों से अक्सर लगान में अनाज का अंश ले लिया करते थे। सरकार की नीति से यह भी चलने न पाया। जब ज़मीदारों से मालगुज़ारी के रुपये लिये जाने लगे, तो उन्हें भी अनाज के बदले रुपया लेने में सुभीता पड़ा। माल-गुज़ारी और लगान की दरें ठहराई गईं। और ठहराई हुई रक़में किस्तों में वसूल की जाने लगीं। अब ज़मींदार या राजा का महसूल अनाज की पैदावार पर नहीं रहा। खेत में अनाज उपजे, चाहे न उपजे, पर राजा और ज़मींदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय, पर उसे लगान की रक़म देनी होती थी। इसमें पैसेवालों की और भी बन आई थी। साहूकारों ने टका रुपया और आना रुपया ब्याज लगाकर किसानों को चूसना शुरू किया। किसानों को क़र्ज़ लेने की बान पड़ गई, और एक बार जिस किसान ने क़र्ज़ लिया, समझो कि वह खड़ा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी ब्याज ही देना पड़ता था, दूसरे ब्याज-पर-ब्याज लगाया जाता था। किसान की खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकारों के

पास चली गई। इस तरह देश में जमींदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड़ गये। कलकत्ता, बम्बई, कराँची, हैदराबाद, मद्रास लाहौर, अहमदाबाद, इन्दौर, आदि बड़े-बड़े शहरों में उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखों इसी तरह के बे-खेत और बे-घर के मर्द औरत गिरिमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाट, फ़ीजी आदि विदेशी टापुओं में चले गये। किसानों की सिधाई और भोलेपन के कारण आरकाटियों को उनके बहकाने में बड़ी आसानी हुई। आरकाटी गाँव में आया और किसान का बड़ा हितैषी बनकर रहने लगा। दुखी किसानों के जिनके खेत साहूकारों की ठगी के कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया "तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हें ३) रु० रोज की मजदूरी दिला देंगे, मज़े में खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुड़ा लेना। कुछ दिनों में तो तुम जमींदारी खरीद लोगे। यहाँ क्यों अपनी मिट्टी ख़राब करते हो? कलकत्ते जाने को ख़र्च नहीं है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी ख़र्च-वर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे, मौज काटो।" आरकाटी ने पैसों का जो जाल बिछाया उसमें रोटियों को तरसनेवाला किसान फँस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानों में से अपने जीवन में हज़ारों में से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों के लिए लौट सका।

वे लौटे क्यों नहीं? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल में बेतरह फँस गये। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशों में पैसा रुपया बहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरने की चीज़ें बहुत महँगी हैं। और कोई बाहरी लूटनेवाला नहीं है, क्योंकि वहाँ के लोग आप ही कल-बल से जगत

को लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान हैं। वे तीन-तीन रुपये रोज़ मजूरी भी देते हैं। हमारे दरिद्र किसान उनके यहाँ मजूरी करने लगे तो उन्हीं-की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश में जैसा खाते थे उसमें मान लो कि चारों आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज़ की मजूरी करनेवाला कारीगर घाटे में नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर का घर होता था, खेत-वाड़ी भी होती ही थी। परन्तु वहां के तीन रुपये यहाँ के चार आने से ज्यादा क़ीमत नहीं रखते, क्योंकि वहाँ पैसा सस्ता है और सब चीज़ें मँहगी हैं। वहाँ के असुरों की बुरी लतें भी लग जाती हैं। तीन रुपये में दो ढाई रुपये रोज़ तो खर्च ही हो जाते हैं, बचता बहुत कम है। फिर जब वह गुलामी से छूटता है तो जो कुछ बचाया होता है वह इतना ज्यादा नहीं है कि आने-जाने का भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारत में खेत खरीद ले। वह अभागा इस देश में किस बिरते पर लौटेगा? यहां विदेशी सरकार ने पैसों का जो मायाजाल बिछाया उसमें फँसाकर ज़मीदार ने किसान को चूसा, साहूकार ने किसानों को चूसा और जब उसमें खून नहीं रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर-बार होकर बरबाद होगया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड़ की ठठरी को आर-काटी ने रेल का किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाई को पैसे लेकर राक्षसों के हाथ बेच दिया। यह सब कुछ विदेशी लुटेरों के लिए किया गया। जानकर नहीं अनजान में, और पैसों की माया मोह में फँसकर। जिसके खेती-बारी, जगह-ज़मीन नहीं रह गई, और रगों में खून भी नहीं रहा, वह बेचारा इस देश में रह कर सूखी ठठरी में प्राणों को किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणी के लोगों की जो खेती भी

करते थे, और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखों नहीं मरते थे, वे भी पैसों के मायाजाल में फँसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊँची जाति के समझते थे। इनकी मोटी समझ में भी जो ज्यादा खर्च करे वही बड़ा इज्जतदार समझा जाता। इसीलिए यह अपने को समाज में ज्यादा इज्जतदार सिद्ध करते रहे। इसमें उन्हें रुपयों की जरूरत पड़ा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेण्ट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायत का एक भारी व्यापारी है, जो लाखों मन अनाज भारत से खींच ले जाता है। इसके कारिन्दे रुपया लेकर गाँव-गाँव घूमते हैं; खड़ी फसल कूत करके खरीद लेते हैं। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले से रुपया दे देते हैं, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते हैं। पैसों की माया में पड़कर किसान अपने खाने के लिए काफी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते हैं। यह खूब जानते हैं कि पैसों से पेट नहीं भरता, फिर भी पैसों पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देश में पैसों की माया में फँसकर बे-जरूरी चीजों की खेती अगर न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतों पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसों की माया में फँसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतों से जहाँ अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे। पोस्ते की खेती करके अफीम बेचने लगे। तम्बाकू की खेती करके देश में जहर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफीम ने किसानों को मोह में फँसाकर कहीं का न रक्खा। ताड़ी से, शराब से, गाँजा, भंग, चरस आदि जितनी नशीली

चीज़ें हैं, सब से विदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीज़ों का प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसे की माया में फँसकर उस महापातक के काम में भी पैसा-पूजकों की मदद करने लगे। पैसे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पैसा अंग्रेज़ों का देवता है, असुरों का परमात्मा है। उसकी माया में जिसे देखो वही फँसा हुआ है। किसान का तो सारा रोज़गार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चमकीला, सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू हो गया। मोटा खद्दर उसके बदन में चुभने लगा। कारिन्दे ने ज़्यादा पैसे देकर कपास की फ़सल ख़रीद ली। उसने भी ख़ुशी से बेच दिया। सोचा कि "इन्हीं पैसों से महीन मलमल ख़रीद लूँगा। ओटने, धुनने, कातने, बुनने की मेहनत से बच जाऊँगा। और इन्हीं कपड़ों से महीन कपड़ा भी मिल जायगा। मेरे घर की औरतें बारीक सूत नहीं काततीं।" इस तरह जो पैसा विलायत से अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया। देखो पैसे की माया में डालकर किसान को कैसा बेवक़ूफ़ बनाया। किसान के घर में दरिद्र का वास होगया। चरखा, चक्की और रई का चलना बन्द होगया। चीनी का रोज़गार, पटसन, सन, सूत, ऊन की कताई-बुनाई का रोज़गार उसके हाथ से छिन गया। देश के लाखों बुनकर, कोरी जुलाहे बेरोज़गार होगये। जब कोई रोज़गार न रहा, लाचार हो, कुली, भंगी, डोम आदि का काम करने लगे या विदेश चले गये। जिन लोगों को खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती मजूरी दोनों करने लगे। इस तरह खेती करनेवाले बहुत बढ़ गये, और उनके पेट का भी बोझा खेती के ही कन्धों पर आपड़ा।

अब खेत की ज़मीन बढ़ानी पड़ी। वह कहाँ से आये? गाँवों की गोचर भूमि जो गउ-बैलों के लिए छूटी रहती थी वह खेती के काम में आने लगी। बेचारी गउओं को उनकी मिल्कियत से निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हें कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बड़ी-बड़ी क़ीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा। और मारी हुई का मांस और उसकी हड्डी का दाम अलग खड़ा होने लगा। पैसे की माया में फँसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ माता को भी बेचकर नरक का रास्ता साफ़ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हज़ारों गायें इसी तरह ख़रीद ख़रीद कर काटी जाने लगीं। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगनेवालों को जीता छोड़ा। दही, दूध, घी पहले ख़ास खाने की चीज़ें थीं। यह आज अमीरों को भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चों के मुँह से दूध की प्याली हटा ले गई। और नक़ली घी, रेशम, चीनी आटा आदि सभी चीज़ें उसने फैलाईं। उसने हमें हड्डी, चरबी, मांस खिला और चबवा कर छोड़ा। एड़ी से चोटी तक हमें हिंसा का अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नंगा राक्षस बना डाला।

हिसाब करनेवालों ने पता लगाया है, कि इन्हीं पैसों की माया में फँस कर आज किसान के सिर पर सात आठ अरब रुपयों का क़र्ज़ा है। जब तक किसान इस भयानक क़र्ज़े के बोझ से पिस

रहा है, तबतक गाँव का सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड़ किसान साल में नौ से तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुँह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मंचेस्टर के मुहताज रहेंगे, जबतक गोरों का पेट भरने के लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयों में अपने को पच्छाहीं सभ्यता की गुलामी और पैसों की मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी, तबतक गाँवों का सुधार न होगा।

भारत में जहाँ-जहाँ रैयतवारी ढंग है; वहाँ तो सरकार से सीधा सम्बन्ध है। पर जहाँ-जहाँ जमींदारी की चाल है वहाँ बीच में जमींदार के पड़ जाने से किसान के साथ जमींदारों से रगड़ा-झगड़ा लगा रहता है। आपस के झगड़े भी बटवारे हक़ीयत आदि के लिए लगे रहते हैं। आये दिन नोन सत्तू लेकर खेती के उपजाऊ कारबार को छोड़कर, अपना लाख हरज करके, अपने भूखे बाल-बच्चों को बिलखते छोड़कर बेचारे किसान को बीसों कोस की दौड़ लगानी पड़ती है। वकीलों मुख्तारों के दरवाजों पर ठोकर खानी पड़ती है। बेचारे को आधे पेट खाने को नहीं मिलता, पर वकीलों मुख्तारों, अहलमदों, पेशकारों और अदालत के अमलों को और अनगिनत ऐसे ही रिश्वतखोरों को, क़र्ज लेकर, खनाखन रुपये गिनने पड़ते हैं। नालिश करते ही रसूम तलबाना वग़ैरा के लिए खर्च करना पड़ता है, और अन्त में फल यह होता है, कि हारनेवाले और जीतनेवाले दोनों के दोनों क़र्ज़े से लद जाते हैं, और जायज़ और नाजायज़ खर्च दोनों मिलकर मुक़द्मा जीतनेवाला भी घाटे में ही रहता है। पुराने जमाने की पंचायतें इसीलिए उठ गईं कि उनके अधिकार विदेशी

सरकार ने छीन लिये और देहातों के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गाँववालों को कचहरी के अर्थात् मूड़ने वालों के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानों में जहाँ मजूरों और मालिक का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजें महँगी तो हो गईं, पर मजूरी उसी हिसाब से नहीं बढ़ी। हम यह बात और जगह दिखा आये हैं। पैसे की माया के कूटनेवाले बैलट के नीचे दरिद्र मजूर और किसान कंकड़ और पत्थर के टुकड़ों की तरह पिस गये। और पैसे के पुजारियों की ठंडी सड़क बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पंचायतें बनने के लिए क़ानून बना, परन्तु इन पंचायतों में वह बात कहाँ है, जो पुरानी पंचायतों में थी। पंचायतों के प्रकरण में हम देखेंगे, कि पहले कैसी पंचायतें होती थीं, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पंचायतें बनाई हैं वे कैसी हैं, और जैसी पंचायतों से हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायतें कैसे क़ायम हो सकती हैं।

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज में भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासमर तक बराबर बढ़ती ही गई थी, और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि, भारत के अत्यन्त शान्त, अत्यन्त सहनशील, और अहिंसा के भक्त, भिक्षा माँगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारों से इतने व्याकुल हो गये कि उन्होंने

स्वतन्त्रता का शान्त निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को जानती थी, कि जितने भारी अत्याचारों को भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं, उनको संसार की सभ्यता के इतिहास में किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी अपडर से सम्वत् १९१४ के असफल भारतीय युद्ध के कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार क़ानून बनाकर अपने क़ब्जे में कर लिये। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया, और पासपोर्ट के क़ानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने क़ब्ज़े में कर रक्खा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी क़िला है, जिसके भीतर अंग्रेज़ नव्वाबों की जागीर है, जहाँ करोड़पती से लेकर भिखमंगे तक उनके क़ैदी हैं, इन क़ैदियों की कई श्रेणियाँ हैं, जिसमें पहली श्रेणी में बड़ी-बड़ी रियासतों के शासक महाराजा, राजा, नव्वाब ताल्लुकेदार और भारी-भारी उपाधियोंवाले ज़मींदार आदि हैं। उसके बाद बीच की श्रेणी के लोग हैं। परन्तु इन दोनों की गिनती बहुत थोड़ी है। सैकड़ा पीछे निन्यानवे वे दारिद्र क़ैदी हैं, जिन्हें इज्ज़त के लिए मजदूर और किसान कहते हैं। उन बेचारों को भर पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियाँ और कीचड़ सी वह दाल और घास का वह भलरा भी भरपेट नसीब नहीं होता, जो इस बड़ी जागीर के मालिक लोग डाकुओं, चोरों, हत्यारों, लठबाज़ों और अत्याचारी गुण्डों को इस क़िले के भीतर की जेलों में खुशी से देते हैं। क्या संसार में ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देश की सुनी गई है ?

इस संसार के अनुपम और विशाल क़िले के भीतर, इन क़ैदियों की जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं क़ैदियों के

सामने रक्खा जाय और उन्हें उनके कष्टों की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना वड़ा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौकों पर वहुत वड़ी चीज़ है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की वेहोशी में भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते हैं, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसूवरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस वेहोशी को क़ायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ में चौरानवे आदमियों को सब तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नहीं जाती थी। पहले के किसान खेती के काम में जितने होशियार थे उसकी गवाही में पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला में कुशल मजूरों और किसानों को विदेशों में भेज दिया, और अधिकांश भारी लगान कर्ज़ आदि के वोझ से लदकर उजड़ गये। नये ढंग की मुक़दमेवाज़ी में फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैज़ा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हें उठा ले गये। अकाल वारम्वार पड़ने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्ष में आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सब वातों ने भारत के किसानों की खेती की कला को चौपट कर दिया। जव वेटे को सिखाने का समय आया, वाप चल वसा। भाई-भाई में मुक़दमेवाज़ी हुई, वँटवारे में चार-चार पक्के वीघे खेत लेकर अलग हो गये। अव हर भाई को अपना-अपना हल-वैल अलग रखना पड़ा। उधर मुकदमेवाज़ी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने व्याज और सूद पर

सूद मिला कर सुरसा की तरह अपना मुँह बढ़ाया, और अन्त में रहे-सहे वह चार बीघे मय हल-बैल के निकल गया। घर-घर किसानों के यहाँ यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गाँवों का उजड़ना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष में बच्चों की मौतें जितनी ज्यादा होती हैं, संसार में कहीं नहीं होतीं। दरिद्रता के कारण माँ-बाप न तो बच्चों को दूध दे सकते हैं और न उनके पालनपोषण की ओर ध्यान देते हैं। बच्चों के होते समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते हैं। और न सफ़ाई रख सकते हैं। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अंश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ़ करके रोगों के खेमे खड़े किये, और जब मौत का पड़ाव बन गया, यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियों की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष में मरते हैं, उतने संसार में और कहीं नहीं मरते। और देशों की हुकूमतें अपनी आबादी बढ़ाने की चिन्ता में रहती हैं, सुख, समृद्धि बढ़ाती रहती हैं, और इन बातों के लिए जरूरत पड़ती है, तो खून की नदियाँ बह जाती हैं। यहाँ की हुकूमत भी खून की नदियाँ बहाती हैं, परन्तु खून होता है भारतवासियों का, और नदियाँ बह कर विलायत के सुख-समृद्धि को सींचती हैं, और बढ़ाती हैं। इस किले के महाप्रभुओं की यह मंशा नहीं है कि कैदियों की ठठरियों में जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मंचेस्टरवालों को तो शायद इस बात में खुशी होगी कि भारत में मौतें ज्यादा होती हैं, और कफ़न की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मजबूत और खेती के काम में कुशल किसान जब

देश से एक बार उजड़ जाते हैं, तो देश के सम्भालने में युगों का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजड़ी खेती को फिर पहले की तरह अच्छी दशा में लाने के लिए अब से सैकड़ों बरस लगेंगे शर्त यह है कि सुधार के काम में भारत के लोग प्राणपण लग जायँ। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपने को बहुत चिन्तित प्रकट करती है परन्तु यह दम्भ मात्र है। उसे वस्तुतः चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारतवर्ष में बेकारी का डंका बज रहा है। यह बात जग ज़ाहिर है कि खेती में कहीं भी बारहों मास के लिए किसान या मजूर को काम नहीं मिल सकता। बंगाल के फ़रीदपुर ज़िले को भारतवर्ष में आदर्श समृद्ध ज़िला बताते हुए जैक नामक एक सिवि-लियन लिखता है कि यहाँ का किसान तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद नौ महीने बिलकुल बेकारी में बिताता है।[१] "अगर वह धान के सिवा पटसन भी उपजाता है तो जुलाई और अगस्त के महीनों में उसे छः हफ्ते का काम और रहता है।"[१] इस तरह कम से कम साढ़े सात महीने बंगाल के किसान बेकार रहते हैं। श्री कैलव्हर्ट का[२] कहना है कि पंजाब के किसान ३६५ दिनों में अधिक से अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते हैं। बाक़ी सात महीने बेकार रहते हैं। संयुक्तप्रान्त के लिए श्री इडाई का बयान है वि दो बार बोवाई, दो फसलों की कटाई, बरसात में कभी-कभी निराई और जाड़ों में तीन बार सिंचाई—किसान के लिए कड़ी मेहनत का काम इतना ही है—

१. J. C. Jack : The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, pp. 39.

२. Calvert's Wealth Welfare of the Punjab.PP. 245

बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है। बिहार और उड़ीसा के लिए श्री टाल्लेंट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते हैं। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रान्त में जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम पड़ता है और जहाँ दो फसल होती हैं वहाँ कुल ८ महीने, इस तरह कम से कम चार महीने किसान को दक्षिण देश में बेकार रहना पड़ता है।[१] इस तरह भारतवर्ष भर में कम से कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम से कम तीन महीने रक्खी है। अपने ही पक्ष मे अटकल की ऐसी कड़ाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढ़े छः महीने होता है परन्तु समीक्षा की कड़ाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छः महीना रखते हैं।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकड़ा पीछे ७५ के लगभग है। इसमें भी जो लोग खेतों पर मेहनत का काम करते हैं उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते हैं कि यही पौने ग्यारह करोड़ आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते हैं। कई अकाल के दिनों में विदेशी सरकार सहायता के रूप में भारत के भुक्खड़ों से कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड़ की जगह दस ही करोड़ लें

१. Prof. Gilbert Steater : Some South Indian Villages-Oxford University Press, London p. 16 ,and Census Reports pp. 270, 271 and 274, For Bihar & Orissa, U. P., and C. P. respectively.

और केवल एकसौ अस्सी दिनों की मजूरी दो आने रोज़ के हिसाब से रक्खें तो आदमी पीछे साढ़े बाईस रुपये होते हैं। छः महीने में दस करोड़ आदमियों की मजूरी के इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होते हैं, या सवा करोड़ रुपया रोज़ाना होता है। इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य रूपी मशीनों को बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड़ रुपये रोज़ और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे सिर पीछे सात रुपये के लगभग खोना पड़ता है। जिस आदमी की आमदनी साल में छत्तीस रुपये हों, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पंचमांश खो देना सह सकेगा ?

सम्वत् १९७८ की मालगुज़ारी की रकम जो सरकार ने वसूल की, सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी सम्वत् १९८१ की एक अरब अड़तीस करोड़ के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढ़े बत्तीस करोड़ से कम था। यही मदें विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मदों में सबसे बड़ी हैं। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पड़ता है, वह इनमें बड़ी-से-बड़ी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानों की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया, परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता। तैयार माल की कीमत अगर मज़दूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के कर्ज़दार हों तो यह कर्ज़ा कुछ ज्यादा नहीं है। परन्तु जैसे संसार के

किसी सभ्य देश के किसान अपनी ज़िंदगी के आधे दिन न तो इस तरह बेकार खोते हैं, और न कई करोड़ की संख्या में पेट पर पत्थर बाँधकर सो रहते हैं, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणासुर के डाढ़ों के बीच पिस रहे हैं।

इस भयङ्कर बेकारी का भयानक परिणाम भी देखने में आरहा है। ख़ाली दिमाग़ में शैतान काम करता है। जिन लोगों को कोई काम नहीं है वे ज्यादातर हुक्का पीते हैं और तमाखू फूँक डालते हैं। तमाखू का ज़हर हमारे समाज के अंग के रोयें-रोयें में फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज़ बन गई है। जो तमाखू ख़ून को ख़राब कर देता है, हृदय और आँतों को बिगाड़ देता है, आँख की रोशनी को ख़राब कर देता है, अच्छे खासे मर्द को नामर्द बना देता है, क्षय रोग पैदा करता है, और आदमी के जीवन को घटा देता है, उसी ज़हर की खेती कमाई करने के लिए नहीं तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है। परन्तु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मन को ही नहीं ख़राब करता, बल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान लें, कि भारत के बत्तीस करोड़ प्राणियों में केवल आठ करोड़ प्राणी धेले की तमाखू रोज़ खाते, पीते, सूँघते और फूँकते हैं तो इस ज़हर के पीछे सवा छः लाख रुपये रोज फूँक देते हैं। साल में तेईस करोड़ के लगभग तमाखू में खर्च कर देते हैं। ताड़ी और शराब की आमदनी से सरकार अंधाधुन्ध फ़ायदा उठाती है, वह तो इसका खासा प्रचार करती है। रहे सहे किसान इन जहरों के कारण उजड़ते जाते हैं। हमारे देश में लगभग बारह लाख एकड़ में तमाखू की खेती होती है। "शैतान की लकड़ी" के लेखक ने तो अटकल लगाया है, कि पचास करोड़ रुपये

की तमाखू हमारे देश में खप जाती है। सन् १९२० ई० में सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा आमदनी हुई। अफ़ीम से सन् १९१९-२० में सरकार को ढाई करोड़ से अधिक आमदनी हुई। गाँजा, भाँग, चरस, चाय काफ़ी आदि नशे की चीजें भी बेकार किसान को तबाह कर रही हैं।

यह भुक्खड़ जिन्हें आधा पेट खाना भी नहीं नसीब होता नशा किसलिए सेवन करते हैं। भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने में उसे शर्म आती है। जब वह होश में रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामों के करने में रुकावट डालता है, परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले। भुक्खड़ भीतरवाले की आवाज़ सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे से अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तड़फ रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुँह में अन्न नहीं रख सकता। जी तोड़कर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफ़ी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय में भी भारत में काफ़ी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुक्खड़ के पास पैसे कहाँ है, कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता है, तड़पते बाल-बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी न किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरों को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल क़िले के कैदियों को बेहोश रखने के लिए भाँति-भाँति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे हैं।

गायों से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परन्तु चारा थोड़ा हो,

और गायें अधिक हों, तो भी आपस में लड़ जायँगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा में हमारा देश है वह तो प्रकट ही है। खाने को थोड़ा मिलता है, और बेकारी हद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा झगड़ा-फ़साद के सिवा कुछ नहीं हो सकता। यही बात है कि कोई गाँव ऐसा नहीं है। और किसी गाँव में एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमें झगड़ा-फ़साद का बाज़ार गर्म न हो, और जहाँ आये दिन लोगों में लट्ठबाजी न होती हो, और फ़ौजदारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गाँव का पटवारी और चौकीदार और थाने के दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फ़िक्र में रहते हैं, कि कोई झगड़ा खड़ा हो और उनकी जेबें गर्म हों। झगड़े में झगड़नेवालों का नुक़सान ही नुक़सान रहता है। और अपनी शान में ही कोरे रह जाते हैं, और सरकारी लोमड़ियाँ शिकार का वारा-न्यारा करती हैं। गाँव-वालों में कचहरी की दलाली का रोज़गार दरिद्रों की इसी कशमकश खसोटी ने पैदा कर दिया है। जहाँ गाँवों का मुखिया बिना एक कौड़ी खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहाँ आज गाँव के दलाल उकसा-उकसा कर चिड़िया लड़ाते हैं, और भुक्खड़ों तक को अदालत के दरवाजे पर पहुँचाकर उनका सर्वस्व हर लेने में कोई कोर कसर नहीं रखते।

४. गाँव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गाँव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गांव में मुख्यत: दो मुलाज़िम रहते हैं, एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को ज़मीन की नाप-जोख खेतों का लगान और ज़मीन के बँटवारे आदि का रेकार्ड रखना पड़ता है। पटवारी इसलिए रक्खा

जाता है कि उससे गाँव का पूरा हाल हुकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफ़सरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगान-नीति को समझने के लिए 'टाइम्स' की 'इण्डियन इयर बुक' में जो लेख है उसका सार यह है :—[१]

सरकार की ज़मीन के लगान-सम्बन्धी नीति यही है कि ज़मीन की मालिक सरकार है और ज़मीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त हैं। किसान अपनी ज़मीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय समय पर पुनः विचार करने के लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेण्ट या बन्दोबस्त कहा जाता है। भारत में दो तरह के बन्दोबस्त हैं, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बन्दोबस्त में तो लगान हमेशा के लिए स्थिर कर दिया जाता है। जो किसान से नहीं बल्कि ज़मींदार से वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७६५ में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। अवध और मद्रास के प्रान्तों के कुछ हिस्सों में भी स्थायी लगान निश्चित कर दिया गया था। शेष सारे देश में स्थायी बन्दोबस्त की प्रथा जारी है। सरकार के सरवे विभाग द्वारा की गई सरवे के आधार पर तीस-तीस वर्ष में प्रत्येक ज़िले की ज़मीन की पूरी जाँच होती है। प्रत्येक गाँव की ज़मीन नापी जाती है। नक़शे बनते हैं। हरेक किसान के खेत को उसमें पृथक-

१. 'विजयी बारडोली' : प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

पृथक बताया जाता है, और उनके अधिकारों का रजिस्टर रक्खा जाता है, जिसमें ज़मीनों का लेन-देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तक को 'वाजिबुल अर्ज़' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते हैं। यह सब जाँचकर उसके अनुसार लगान क़ायम करने का काम भारत सरकार की सिविल सर्विस के ख़ास तौर पर नियुक्त सभ्यों द्वारा होता है जिन्हें सेटलमेण्ट अफ़सर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इण्डिया के संशोधित संस्करण १९११) में सेटलमेण्ट अफ़सर के कार्यों का नीचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते हैं—

सेटलमेण्ट अफ़सर का काम

"सेटलमेण्ट अफ़सर को सरकार की माँग निश्चित करनी पड़ती है, और जमीन सम्बन्धी तमाम अधिकारों, हक़ों और ज़िम्मेदारियों को रजिस्टर कर लेना पड़ता है। उसकी सहायता के लिए इस काम के अनुभवी सहायक भी दिये जाते हैं। जो प्रायः सब देशी ही होते हैं। एक ज़िले का इन्तज़ाम करना एक बड़ी जिम्मेदारी का और भारी काम है, जिसमें दिन-रात काम में लगे रहने पर भी बरसों लग जाते थे। खेती-विभाग की स्थापना तथा अन्य सुधारों के कारण अब तो सेटलमेण्ट अफ़सर का काम बहुत कुछ आसान हो गया है, और वह पहले की अपेक्षा बहुत जल्द समाप्त हो जाता है। जितना भी काम सेटलमेण्ट अफसर द्वारा होता है, उसकी उच्चाधिकारियों द्वारा जांच होती है, और लगान-निर्णय सम्बन्धी उसकी सिफारिशें तभी अन्तिम समझी जाती हैं। उसके न्याय-सम्बन्धी निर्णयों की जाँच दीवानी अदालतों में हो सकती है। सेटलमेण्ट अफ़सर का यह कर्तव्य है कि वह जमीन सम्बन्धी उन तमाम अधिकारों और हक़ूक़ात को नोट करले, जिनपर आगे चलकर किसान और सरकार के बीच झगड़ा होने

की सम्भावना हो। मतलब यह कि वह किसी बात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। जो कुछ भी बात हो, उसी को वह ठीक-ठीक लिख ले।"

दो प्रणालियाँ

अस्थायी बन्दोबस्त में भी लगान दो प्रणालियों से वसूल किया जाता है; एक रैयतवारी और दूसरी ज़मींदारी। जहाँ तक लगान से सम्बन्ध है, दोनों में स्थूल रूप से यह भेद है कि रैयतवारी प्रणाली से जिन प्रदेशों में लगान वसूल किया जाता है, वहाँ काश्तकार सीधा सरकार को लगान देता है, जहाँ ज़मींदारी प्रणाली है, वहाँ ज़मींदार अपने इलाक़े का लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरह की होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकार को लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गाँव या जाति का मुखिया गाँव से लगान वसूल करके देता है। सरकार के प्रति जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है इस तरह की रीति उत्तर भारत में अधिक है और पहिले प्रकार की रैयतवारी प्रणाली मद्रास, बम्बई, ब्रह्मा और आसाम में प्रचलित है।

पहले की अपेक्षा आजकल की लगान नीति सब प्रकार की ज़मीनों पर, किसानों के लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेण्ट की अवधि में ज़मीन की जो औसत कूती जाती थी, उसीपर लगान लगा दिया जाता था। अब तो लगान कूतते समय ज़मीन की जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसी के आधार पर लगान का निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनत से ज़मीन की पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हाँ, नये बन्दोबस्त में इस ज़मीन को किस वर्ग में रक्खा

जाय, इसपर पुनः विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाज़ार भावों में वृद्धि होने के कारण बढ़ गया हो, तो उस जमीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धान्त को अब मान लिया है कि किसी ख़ास तरीक़े पर कोई किसान अगर अपनी जमीन की उपज बढ़ा लेता है, तो उसपर लगान न बढ़ाय जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिये हैं।

लगान की तादाद

भारत में ज़मीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एक निश्चित दर नहीं है। वह स्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में एक प्रकार का है तो अस्थायी बन्दोबस्तवाले सूबों में दूसरे प्रकार का। फिर जमींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशों में और भी अलग-अलग। रैयतवारी में भी वह ज़मीन की क़िस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बंगाल में लगभग १६०००००००) रुपये जमींदार लोग अपनी रैयत से वसूल करते हैं, परन्तु चूँकि वहाँ स्थायी बन्दोबस्त हो गया है, इसलिए सरकार उसमें से केवल ४००००००००) रुपये लेती है। अस्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशों में ज़मींदारों से, अधिक-से-अधिक लगान का ५० फ़ी सैकड़ा सरकार वसूल करती है। कहीं-कहीं तो उसे फ़ी सैकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पड़ता है। पर यह निश्चित है कि वह फ़ी सैकड़ा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणाली में सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना ज़रा कठिन ही है। पर ज़मीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पाँचवाँ हिस्सा सरकार का भाग समझ लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकार के रेट मिलेंगे, पर इससे अधिक तो कहीं नहीं है।

लगभग सोलह सत्रह वर्ष पहले भारत के कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने भारत सरकार को अपने दस्तख़त से इस आशय की एक दरख्वास्त (Memorial) भेजी थी, कि वह ज़मीन की उपज के पाँचवें हिस्से से ज्यादा लगान कभी न ले। उस समय लार्ड कर्ज़न वाइसराय थे। उन्होंने इस 'मेमोरियल' तथा अन्य 'रिप्रेज़ेन्टेशेन्स' के जवाब में अपनी लगान-नीति के बचाव में एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकार को जितना लगान लेने को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रान्त में औसतन् लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रान्तीय सरकारों के बयान भी, जिनपर यह कथन आधार रखता था, बाद में पुस्तकाकार छपा दिये गये थे। आज भी सरकार की लगान-नीति के नियमों को प्रकट करनेवाली वही सबसे प्रमाणिक पुस्तक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्ताव में अनेक सिद्धान्त निश्चित किये गये हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :—

लगान नीति

"(१) जमींदारी प्रदेशों में सरकार की नीति की कुंजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से-अधिक फ़ी सैकड़ा ५० मालगुज़ारी ली जाय। इस समय तो यदि ग़लती होती है, तो लगान कम वसूल किया जाता है, अधिक नहीं।

(२) इन प्रदेशों में जमींदारों के अत्याचारों से काश्तकारों को बचाने के लिए क़ानून बनाकर या अन्य तरह से हस्तक्षेप करने में सरकार कभी हिचकिचाती नहीं।

(३) रैयतवारी प्रदेशों में बन्दोबस्त की मीयाद दिन-ब-दिन अधिक बढ़ाने की कोशिश हो रही है। नये बन्दोबस्त के समय जो-जो

कार्यवाहियाँ होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) ज़मीन सम्बन्धी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं हैं।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, ज़मीन से इतना कर वसूल नहीं किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कंगाल हो रहे हों। इसी तरह अकालों का कारण भी लगान नीति नहीं है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धान्त क़ायम कर लिये हैं।

(अ) अगर लगान से इज़ाफ़ा करना है तो वह क्रमशः और धीरे-धीरे किया जाय।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय। मौसिम तथा किसानों की दशा को ध्यान में रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करने की तारीख़ बढ़ा दी जाय और लगान माफ़ भी कर दिया जाय।

(इ) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बड़े पैमाने पर घटाया भी जा सकता है।"

ऊपर की प्रकाशित नीति हाथी के दिखाने के दाँत हैं। खाने के दाँत और ही हैं। इस अवतरण में तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रजा का दरिद्र होना, बार-बार अकाल का पड़ना, करोड़ों की संख्या में भारतवासियों का मरना सब कुछ भारतवासियों के अपने कसूर से है। लगान और मालगुज़ारी की सारी शिकायतें झूठ हैं। उसका एक अच्छा सा उदाहरण यह है कि गवर्नमेण्ट कहती तो है कि हम मुनाफे का ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते हैं परन्तु मातार ताल्लुक़ा (गुजरात) में लगान का ३२'६ गुना कर लगाया गया। दो एक गाँवों में ५१

प्रतिशत था, परन्तु बाक़ी सब गाँवों में ७१ से लेकर ६४ प्रतिशत तक कर लगाया गया था।[१] जो बातें इस सम्बन्ध में सरकार के ही बताये हुए अंकों के आधार पर हम पहले दिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफ़ेदी हो जाती है। ज्यादा टीका-टिप्पणी की ज़रूरत नहीं है। सारांश यह कि इस सफ़ेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किसी प्रकार न मिटनेवाला सत्य यह है कि संसार में कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की में पिस रहा है। इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही ख़र्च किया जाता। एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देश का धन बाहर चला जाता है। इसपर बड़े भोलेपन से यह जवाब दिया जाता है कि आख़िर हुकूमत का ख़र्च और सेना का ख़र्च कैसे चले? दरिद्र किसान इस जवाब से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। "अगर आप किफ़ायत से ख़र्च नहीं कर सकते, तो आपमें बन्दोबस्त की योग्यता नहीं है। आपने हमसे कब पूछा कि हम इतना ख़र्चीला बन्दोबस्त करें या न करें। हमें आपकी सेवा नहीं चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए। हमें तो चाहिए रोटियाँ, जिनके लिए हम तरस रहे हैं।"

१. "An Economic Survey" Young India, 1929, page 389 para 6.

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे क्या हो गये ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुक़ाबला करते हैं, तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे आज क्या हो गए। हम सुख से रहते आए। मेहमानों से जी खोलकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरों में कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आए तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियों से सम्बन्ध था। परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये कैसे मेहमान आये जिनकी निगाह सदा हमारे माल पर रही और आज भी, जब हम बरबाद हो गए हैं, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नहीं लेती।

२. लुटेरों की मेहमानी

जिस समय विदेशियों से हमारा अधिक सम्बन्ध न था उस समय भारतवासियों की खत्ती बखारियों में अन्न समाता न था, पशु यथेष्ठ थे, दूध घी अच्छी तरह मिलता था, लोगों के शरीर पर मज़बूत कपड़े भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और महँगी का तो कहीं नाम भी न था। उन दिनों हृदय में कंजूसी को जगह न मिलती थी। कोई मेहमान आ जाता था तो वह भार नहीं होता था। उसके आने

से किसान फूले नहीं समाता था। देशवासियों में सादगी, सन्तोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल में उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों में लद-लदकर यहाँ से जाने लगा। पहले यहाँ की अनमोल कारीगरी की चीजें ही जाती थीं परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढो कर जाने लगा। आज तो विदेशियों का बस चले तो वे भारत भूमि की आँतें तक निकाल-कर रेल में लादकर ले जायँ। और यही हो भी रहा है। सोना, चाँदी और मेंगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहाँ जाता है? अन्न, रुई, तेलहन यहाँ तक कि हड्डियाँ तक धिनवा-बिनवा कर कहाँ जाती हैं? साथ ही मजेदार बात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अंग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पड़ता है। पाँच करोड़ की रुई जाती है और साठ करोड़ का कपड़ा आता है। बीच के पचपन करोड़ कहाँ चले जाते हैं? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उस लूट को हम लूट तो कह सकते हैं। यह कप्पड़शाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए उन्हें सस्ते कपड़े देने और उन्हें भाँति-भाँति के लाभ पहुँचाने के लिए ही वह यहाँ आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढ़कर अचरज की बात तो यह है कि भारत के किसान उसकी लूट में शामिल होते हैं और उसमें अपना लाभ समझते हैं।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हें खेती करना नहीं आता। तुम्हारे हल और औजार बहुत पुराने हैं, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है—जंगली

है। अब तुम्हें विलायती ढंग के लोहे के हल काम में लाना चाहिए। हमारा कृषि विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम में पड़कर, कि साहब जो कहते हैं ठीक होगा, उनके कहे पर चले, परन्तु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते हैं कि किसानों के खेत विस्तार में बहुत छोटे-छोटे हैं। इस तरह के खेतों में वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं हो सकती। भाफ के इंजन से चलनेवाले औज़ार इनमें काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानों को उजाड़ कर जमीन के बहुत बड़े टुकड़ों में खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घर में छोटे-छोटे चूल्हे रखने से हरेक घर की स्त्रियों को रोटी-पानी में फँसना पड़ता है, और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान में बड़े-बड़े भठियारखाने खोल दिये जायँ, तो अनेक स्त्रियों को फ़ुरसत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अंक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्हों को नष्ट करके रोटी-पानी के झंझट से भी पीछा क्यों न छुड़ा लिया जाय? भारतवासी जंगली हैं। उनका उत्तराधिकार का क़ानून भी पुराने ढंग का है। उसके कारण ज़मीन छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटती जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक नया क़ानून बनाकर छोटे-छोटे किसानों से ज़मीन छीन ली जानी चाहिए, और किसी बड़े ज़मींदार को—चाहे वह गोरा हो या काला—दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी और आधुनिक औज़ार काम में लाये जा सकेंगे। औज़ार सब विलायत से आयेंगे, टूटें फूटेंगे तो उनके कल पुर्जे भी वहीं से मँगाने पड़ेंगे। वैज्ञानिक खाद भी काम में लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचनेवाली

कम्पनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान ज़मीन छोड़कर मज़े के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें क़साईख़ाने में भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी क़ीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोड़िये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट! कम्पनी-वाले खुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगेंगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा और कुछ नहीं। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिंचाई कीजिए। किसान इस तरह की बातें सुनकर अचम्भे में पड़ जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फ़ायदा सोचा

पहले खेत में जो पैदावार होती उसीमें सरकार का भाग रहता था। यदि फ़सल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमें झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुज़ारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस ज़मीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमें किसान की सम्मति लेना ज़रूरी न रहा। वह इन बातों को क्या जाने? प्राचीन काल में भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग बतौर मालगुज़ारी के लेते थे, परन्तु अँग्रेज बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत, बाक़ी सभी मालगुज़ारी में चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैंकड़ा पचास से अधिक मालगुज़ारी लेती है और दिन पर दिन इसमें भी इज़ाफ़ा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुज़ारी तै करनेवाले अफ़सरों के ख़िलाफ़ कोई शिकायत सरकार में सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआँ खुदवाता है और पैदावार बढ़ाता है, तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ़ जाती है। ऐसी दशा में किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीके के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन ख़राब होती गई, और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल में डटे रहने की ताक़त घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह क़र्जदार हो गया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको व्याज भी उतना ही अधिक देना पड़ता है। इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर क़र्ज़ का बोझ इतना ज्यादा हो गया है, कि वे उससे दबे जा रहे हैं और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत में एक क़ानून बनाया गया है, उसका नाम है "दक्षिण के किसानों को आराम पहुँचानेवाला क़ानून"। इस क़ानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र में और फिर गुजरात में काम किया गया। इस

क़ानून से सरकार की लगान नीति की सख्ती में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ़ यही हुआ है, कि सङ्कट के समय किसानों को उधार देनेवाला भी अब कोई नहीं रहा। सरकार खुद किसानों को रुपया उधार देती है और तक़ावियाँ बाँटती है। इसकी किस्तें, नियम और व्याज आदि बातें इस तरह गढ़ी गई हैं, कि किसान पानी से निकलकर आग में जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेत कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तक़ावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ़ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल मुहकमे के अफ़सर ही होते हैं। पत्रं-पुष्पं से उनकी भली भाँति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है और दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन से कठिन क़ायदों की पाबन्दी करनी पड़ती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना बन्द कर दिया, दूसरी ओर सरकार सख्ती करने लगी। किसान को किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्ती के खर्चे के लिए वक़्त बेवक़्त कुछ-न-कुछ रुपयों की जरूरत पड़ती ही है, लेकिन अब वे कहाँ से लाये? किसानों की इस बेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानों का था। हाथ में छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र में उतरा। काबुलियों के व्याज ने महाजन और सरकार को भी भुला दिया। रुपये दो या हड्डियाँ तुड़वाओ। यही काबुलियों का नियम था। महाजन किसान को एकदम चूसता न था। वह आँखें दिखाता था, नरम-गरम होता था, किन्तु किसान को ज़िन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त दर पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू समाज, इसलिए वह

अधिक सख्ती कर भी न सकता था। किन्तु काबुली को क्या? महाजनों का लेन-देन बन्द होने पर इस समय देहात में काबुली जो लूट मचा रहे हैं, उससे किसानों की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोड़कर कहाँ जाय और क्या करे? किसानों को आराम पहुँचानेवाले सरकारी क़ानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भण्डारकर जैसे सरकार के खैरख्वाह ने भी एक बार व्यवस्थापिका परिषद् में काबुलियों की इन ज्यादतियों का वर्णन कर, प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की निन्दा की थी। एक ओर मालगुजारी का बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि बिना उसके गोरे हाकिमों की बड़ी-बड़ी तनख्वाहें और भारतवासियों को क़ब्ज़े में रखने और विदेशों पर चढ़ाई करने के लिए रक्खी हुई फौज का ख़र्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानों की देनदारी और लाभदायक कहे जानेवाले क़ानूनों का भयङ्कर परिणाम दोनों के बीच में बेचारे किसान पिसे जा रहे हैं।

किसान को रुपयों की ज़रूरत तो पड़ती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीज़ें बोनी पड़ती हैं जिससे रुपये मिल सकें। बच्चों के लिए अन्न और पशुओं को चारा चाहिए। किंतु सरकार और काबुलियों के आगे वह इन चीज़ों का विचार तक नहीं करता। बच्चे और पशुओं का चाहे जो हो, सरकार का लगान और काबुली का पावना तो चुकाना ही होगा। इस प्रकार लगान देने के लिए, काबुली को खुश रखने के लिए, महाजन से कुछ अन्न पानी लिया हो तो उससे उऋण होने के लिए, किसान को अपनी पैदावार—समूचे वर्ष के कठिन परिश्रम का फल बेच देना पड़ता है। न वह अनुकूल भाव की राह देख सकता है, न अनुकूल समय की। फल यह होता है कि उसे

अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पड़ता है। चैत में जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पड़ता है, किन्तु बरसात में खाने या कातिक में बोने के लिए जब उसे उसकी जरूरत पड़ती है, तब वही छः रुपये मन खरीदना पड़ता है। नक़द रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पड़ता है। इन रुपयों का ब्याज जोड़ने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पड़ता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पड़ती है। जिस समय किसानों को सरकारी किस्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट में जाकर देखने से, किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी मोल बेचते हैं, इसका पता चल सकता है। सरकार की किस्त महाजन या काबुली से भी भयङ्कर होती है। काबुली तो अन्त में मनुष्य ठहरा, किस्त मनुष्य थोड़े ही है जो मान जायगी। किस्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढुंढ कर या पाताल फोड़कर कहीं न कहीं से तेल लाना ही होता है। किस्त की बदौलत किसान के यहाँ साक्षात यमराज आ पहुँचते हैं। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेंच देनी पड़ती है। पशुओं का चारानी बेच देना पड़ता है, जी जिलाने के लिये रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पड़ता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाजार भाव तो व्यापार के अनुसार घटता बढ़ता है। उससे फ़ायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तजार करना पड़ता है, किन्तु किस्त के समय में घटा-बढ़ी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीजें बेच देनी पड़ती हैं। किसान को इन सब दुःखों से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग समितियों की

स्थापना की। जिन किसानों की पंचायतें तोड़कर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हीं में इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य में ही आया। जिन गाँवों में ऐसी समितियाँ क़ायम की गईं, उन गाँवों को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफ़सरों के नीचे इस तरह दब गये कि जिन गाँवों में ये समितियाँ अभी तक क़ायम हैं उनमें कोई दूसरा आन्दोलन चल ही नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गाँवों में सहयोग समितियाँ हैं उन गाँवों में खादी के आन्दोलन की जड़ नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते हैं। ऊपर से सुपरवाइज़र और आर्गनाइज़र उन्हें लाल पीली आँखें दिखलाया करते हैं। ऐसी अवस्था में बेचारा किसान क्या कर सकता है? सहयोग समितियों से क्या-क्या लाभ हुए इसका वर्णन हम यहाँ करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में सिर्फ़ इतना ही कहना काफ़ी है कि उनका ब्याज, उनमें होनेवाली धूर्तता, उनकी किस्तें, उनकी सख़्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहाँ-जहाँ वे क़ायम हैं वहाँ लोग बेतरह ऊब उठे हैं।

५. मालगुज़ारी की तहसील

सरकार ने क़ानून बनाकर, सरकारी मालगुज़ारी साल में दो किस्तों में लेना तय किया है, किन्तु देहात में मालगुज़ारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार में—एक मुश्त, वसूल करने की कोशिश करते हैं। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि, भविष्य में शायद रुपये रहें न

रहे, सरकार का लगान तो आख़िर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नहीं दे देते ?" सरकार ने कानून बनाया कि फ़सल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुल्तवी रखकर अगले साल लिया जाय। किन्तु पटवारी और सर्कल इन्स्पेक्टरों की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते हैं। इस सम्बन्ध में न तो वे किसानों से पूछते हैं न कोई जाँच ही करते हैं। क़ानून आल्मारियों की किताबों में ही रह जाते हैं। ऊँचे अधिकारियों को छोटे कर्मचारियों की बात माननी ही पड़ती है। न मानें तो देहात में सरकार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेड़ा ज़िले में यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियों की बात रखनी पड़ी थी, किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पड़ा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतख़ोर होते हैं। किसान को जब कोई काम पड़ता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पड़ती है। सरकारी क़ानून है किसी मिसिल की नक़ल ज़रूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है, किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी। पटवारी की लड़की या तहसीलदार के लड़के का व्याह होने पर किसान क्या-क्या सौग़ात नज़राना देते हैं, सो सुनिए। सरकारी नौकरों को तरकारी, दूध और घी में कितने पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं ? उनके सफ़र के लिए सवारी का इन्तज़ाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाज़िर है, तम्बू के लिए खूँटों की ज़रूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खड़ा है, घोड़े के लिए घास की ज़रूरत हुई तो किसान

की लाँक (दानों समेत अन्न के पौधों के गट्ठे) मौजूद हैं, शीतल जल के लिए घड़ा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खड़ा है, हजामत या चम्पी करवानी हुई तो नाई हाज़िर हैं, किसी दूसरे गाँव को चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगार के लिए चमार या भंगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुई तो अहीर खड़ा है। घी दूसरों को रुपये सेर नहीं मिलता, किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा, क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड़ सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते हैं, तब मुखिया और पटवारी ही क्यों बाक़ी रह जायँ? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी पेशा लोगों को दो-दो दिन मुफ़्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसी के हल-बैल पकड़ मँगाये गये, काटने का वक़्त हुआ तो मजूर बेगार में पकड़ लाये गये, और घोड़ी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुँचाने की फ़रमाइश की गई। यह एक प्रकार का कर है। जिस तरह देशी रियासतें सरकार को कर देती हैं, उसी तरह किसानों से यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हें जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है? सरकार की यह हुकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्मचारियों तक छन-छन कर चलती है। हरेक काम के लिए बड़े से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिरपर चढ़ाना पड़ता है। इसका देशवासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पड़ता है। जब इंग्लैण्ड और भारत के आपसी सम्बन्धों का इतिहास लिखा जायगा, तब, इंग्लैण्ड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किन्तु जो गाँव के गाँव नष्ट होगये हैं, लोगों की नीति छिन्न-भिन्न होगई है, जनता भी डरपोक बन गई

है, लोग झूठ बोलना सीख गये हैं, लोग मारतेखाँ को पूजने लग गये हैं, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाड़ी के बेंट की तरह देशवासियों पर जो चोटें कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर अँग्रेजी शासन-पद्धति ने जो बुराइयाँ की हैं, और देशवासियों को जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और क़त्ल लाख दरजे अच्छे थे! तैमूर की लूट, नादिरशाह की क़त्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई सभी इससे अच्छे थे।

९. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओं पर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रलोभन में पड़ गये किन्तु पशुओं ने कौनसा अपराध किया था? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजों के साथ हरी चीजें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओं को चरने के लिए भारत में गोचरों की कमी नहीं थी, किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के किरानी और डिरेक्टरों से लेकर आजतक जहाँ रुपयों के लिए हाय-हत्या मची हुई है उसपर भूखे राज्य के पास गोचर कैसे रह सकते हैं? गोचरों की ज़मीन लाट की लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंग की तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबों की मेमों को सोने की जंजीरें पहनाई गईं और लाल हाथ किये गये। इन लाटों की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी? हजारों बीघा जमीन कितने दिनों में जोती जाती? घास की जड़ें भी खूब गहराई तक ज़मी हुई थीं। बस विलायत से स्टीम प्लाऊ—इञ्जन से चलनेवाला

हल—मँगाया और बात की बात में जमीन जोतकर बराबर करदी गई जिन लोगों के पशु इन जमीनों में चरकर आशीर्वाद दिया करते थे, जिन गाँवों के निकट ये गोचर थे, और दूर-दूर के अहीर गड़रिये जो इन गोचरों से लाभ उठाकर भारतभूमि को सुजलां सफलां कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गये। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ में अनेक काले लोग भी थे, किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गये थे। इन सबको देखकर देहातियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

ख़ैर किसी तरह ये लाट जोते गये, घास की जड़ें उखाड़ फेंकी गईं और उनके स्थान में कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल होगये और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाम में लाभ हुआ, फिर मालगुजारी में बढ़ती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियों में झगड़ा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते, उन्हीं से लड़ाई होती। लाटवालों ने देहातियों को दबाने के लिए पठानों को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दंगे और हत्यायें हुईं। किन्तु इनका कौन हिसाब? हत्याओं की ओर कौन देखता है? जिन लोगों के पुश्तैनी हक़ छिन-गये, उनमें से कुछ लोगों ने लूटमार का पेशा इख्तियार करके मौके-बे-मौके लाटवालों को तंग करना शुरू किया। जिन साहबों ने यह आग लगाई थी, वे शाही महलों में बैठे हुए चैन की बंशी बजा रहे थे और देशवासियों की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्यों की बात। वे पशु कहाँ गये, जिनके लिए प्रकृति ने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था? चारे की कमी के कारण किसान ने

उनका ज्यादा तादाद में रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पड़ी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु क़साईखाने और अच्छे पशु ब्रेजिल चले गये। किसान को रुपये काफ़ी मिले, पर वे दो ही दिन में काफ़ूर होगये। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गये केवल एक दूसरे को आँखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेण्ट स्कीम अर्थात् खेती की उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरों और पड़ी हुई जमीन को खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीके को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे, किन्तु इस योजना से भारतमन्त्री को आनन्द हुआ। भारत की उन्नति हुई। यह सब आजकल के अर्थशास्त्रों के फेर में पड़कर हुआ।

सरकार पाँच-पाँच वर्ष में पशुओं की गिनती के अंक प्रकाशित करती है। उन्हें देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत में पशुओं की संख्या दिनों दिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसी के पास एक ही बैल होता है वह दूसरे को साझीदार बनाकर काम चलाता है, किन्तु इनसे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलों की अच्छी जोड़ी होती है, तो उसका मूल्य दो ढाई सौ रुपये आँका जाता है। सब किसान ढाई सौ की जोड़ी कैसे ले सकते हैं? बैलों की अच्छी जोड़ी रखना आजकल हाथी बाँधना समझा जाता है। अच्छी नस्ल के पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनों में उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई क़िस्म के भारतीय घोड़ों का निशान

संसार से मिट गया है, उसी तरह, यह हुकूमत चलती रही तो, बैलों की भी अच्छी नस्लें लोप हो जायँगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए। वहाँ अब सिन्धी लोग बैल बेचने जाते हैं। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूप था, जिस गुजरात में गोचरों की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढ़िया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगों को अब सिन्धियों से बैल खरीदने पड़ते हैं।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पड़ता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय का न रहता था, किन्तु अब महँगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखना नहीं बन सकता। पशुओं को खिलाने में भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गायें पालकर क्या करें? उन्हें क्या खिलाएँ? उन्हें बेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रक़म मिलती है। मांस का भी मूल्य मिलता है, चमड़े का भी मूल्य मिलता है, हड्डियों का भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगों का भी मूल्य मिलता है। पशु को ज़िंदा रखने में जितना लाभ है, उसको मार डालने में उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर में अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकार ने इसके लिए क़साई खाने खुलवा दिये। अकेले बम्बई का ही उदाहरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहाँ क़साईखाने में प्रति वर्ष कितने पशुओं की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते हैं। बतलाइए, अब घी और दूध कहाँ से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान में वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान में नेल्सन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तड़प रहे हैं, किन्तु किससे शिकायत की जाय? गोचरों को नीलाम

करने का साहबों से या उन्हें खेत वनाकर मालदार वननेवाले देश वासियों से ? गोचरों की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके में तुलसी के वन थे। वहाँ की तुलसी प्रति वर्ष गोकुल-मथरा और काशी के देवताओं पर चढ़ाई जाती थी, किन्तु वे गोड़-गोड़ कर वरावर कर दिये गये और तुलसी के स्थान में वहाँ कपास के पौधे लहराने लगे। यह कपास मन्चेस्टर और टोकियो गई। वहाँ से उसके रुपये आये। उन रुपयों से हमने विलायती कपड़ा ख़रीदा और जो वचा उससे सावुन, तेल, फुलेल और मौज शौक़ की हज़ारों चीजें लीं। दूध की क्या आवश्यकता है ? भारत के सुकुमार तपड़ते हैं तो उन्हें तड़पने दीजिए।

७. जंगल भी लुट गये

मनुष्य और पशुओं की अवस्था देख चुके। चलो, अव ज़रा वृक्षों के पास चलें। वताओ भाई तुम्हारे क्या हाल हैं ? वृक्ष माने प्रकृति का वनाया हुआ वँगला। उसमें नजाने कितने जीव जन्तु विश्राम करते हैं। किन्तु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितन वृक्ष कटते हैं। माना कि मिल और जिनों के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु क्या इनके लिए नए वृक्ष भी रोपे जाते हैं ? अँग्रेज़ी में एक कहावत है कि "वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।' ज़रा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। वड़े शहरों में रहनेवाले लोग देहातों से लकड़ियाँ और कोयला माँगते हैं। ख़ैर कोई हर्ज़ नहीं, किन्तु क्या शहरातियों को कभी यह वात भी सूझती है कि वर्ष में कम से कम एक वृक्ष तो कहीं लगवा दें ? सम्भव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहाँ लगायें ? तिमंज़िले पर, जहाँ रहते हैं वहाँ ? उनके पास तो विस्वा भर भी ज़मीन

नहीं है। वे तो बिना मकान के रईस हैं। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयले के जो बोरे पर बोरे चले आ रहे हैं ये कहाँ से आ रहे हैं? बम्बई सरकार ने महुओं के संबन्ध में एक क़ानून बनाया है। महुओं से शराब बनती है, इसलिए घरों में उनका रखना जुर्म क़रार दिया गया है। जब महुए घर में नहीं रक्खे जा सकते तब वृक्ष ही रख कर क्या किया जाय? रुपयों के लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशा में महुओं के वृक्ष कब तक अपनी ख़ैर मना सकते हैं? केवल खेड़ा ज़िले में पाँच-सात वर्षों में जितने महुए काटे गये हैं, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थान में नए वृक्ष कितने लगाये गये? विज्ञान हमें बतलाता है कि जहाँ वृक्ष कम होते हैं वहाँ वर्षा भी कम होती है। और जहाँ वृक्ष अधिक हैं वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा क्यों नहीं होती? इस सम्बन्ध में भली भाँति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश में जितने वृक्ष काटे जाते हैं उतने लगाये नहीं जाते। जर्मनी में इस आशय का एक क़ानून है कि जिस दिन राजा का जन्म दिन हो उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए। किन्तु इस देश में ऐसे क़ानून कौन बनाए? लावारिस देश में किसे किसकी ग़रज़ है? जंगलों से सरकार को आमदनी होती है। कुछ जंगल रिज़र्व रखकर बाक़ी काटे जाते हैं। इनका व्यापार करने के लिए टिम्बर मर्चेण्ट (चोरी हुई लकड़ी के सौदागर) पैदा हुए हैं। रेल का विस्तार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पटरी के नीचे रखने के लिए स्लीपरों की जरूरत पड़ती है। इसके लिए भी जंगलों पर ही शनि दृष्टि डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जंगल कटते जायँगे और ज़मीन साफ़ होती जायगी, त्यों-त्यों खेती की उन्नति के लिए डेवेलप-

मेण्ट स्कीमें बनती जायँगी। इसे ग़नीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जंगल रिज़र्व रक्खे जाते हैं, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकड़ी की माँग होने के कारण सरकार को इन जंगलों से लाभ होता है जिस दिन सरकार को मालूम हो जायगा, कि इसमें कोई लाभ नहीं है बल्कि ज़मीन के लाट बनाकर देने में ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ़ हो जायँगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल बजा रहे हैं। बेचारा किसान इन सबों के बीच में मृत्युशैय्या पर पड़ा है।

एक जरूरी बात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाने की ताक़त भी बहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि ज़मीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार से उनमें उतना ही डाला जाय। भारत से प्रति वर्ष अंडी, सरसों, तेलहन, चमड़ा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि क़ीमती वस्तुएँ लाखों टन विलायत जाता है, परन्तु उनके बदले ज़मीन में क्या पड़ता है? अनेक स्थानों में तो किसानों को लकड़ियाँ नहीं मिलतीं इसलिए वे गोबर के कंडे बनाकर जलाते हैं। ऐसा करने से सोने-चाँदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से ज़मीन की उपजाने की ताक़त दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत ख़राब, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर में न रहने पाये, ऐसी अवस्था में किस प्रकार क्या डालकर वह ज़मीन की उपजाने की ताक़त क़ायम रख सकता है? सरकार का कृषि-विभाग कहता है, कि उसे विदेशियों से कृत्रिम खाद ख़रीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियों के हाथ लगें।

: ११ :

दरिद्रता के कड़ुए फल

१. दरिद्रता की हद

अभी संवत् १९८६ में ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेण्ट का कोई मजूर सदस्य भूख से व्याकुल होकर सभा-भवन में ही बैठे-बैठे बेहोश होगया। यह मजूर सदस्य बड़ा दरिद्र था। क्योंकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौण्ड अर्थात् ५३३३) रुपये थे। पार्लमेण्ट के प्रभुओं ने तरस खाकर ५० पौण्ड अर्थात् ६६७) रुपये और बढ़ा दिये, क्योंकि शायद इस ग़रीब सदस्य को पाँच-छः प्राणियों के बड़े परिवार का खर्च उठाना पड़ता था।[१] ब्रिटिश पार्लमेण्ट की निगाहों में यह मजूर सदस्य जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, बहुत दरिद्र था, और उसकी आमदनी खर्च के लिए काफ़ी न थी। यहाँ के लोगों की आमदनी संसार के सभी देशों से अत्यन्त कम है। सिर पीछे ३७) रुपये सालना से कम नहीं है। अगर १४-१५ रुपये रोज़ कमानेवाला पार्लमेण्ट की नजरों में ग़रीब है तो ६-७ पैसे रोज़ कमानेवाला क्या होगा? उसे किस कोटि में रक्खेंगे? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ में जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना, कपड़ा और रहने की जगह भर

१. यह समाचार कई पत्रों में छपा था, परन्तु न तो मैंने इसका कोई खण्डन देखा, और न इसके अधिक वृत्तान्त मिले।

मुश्किल से मिले, वह विना ऋण लिये कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी मंगत को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल की नहीं है। यह ब्रिटिश राज में इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले ज़माने में दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यवर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल में पाँच छः सौ रुपये से कम नहीं है, या यों कहिए कि जो लोग सालभर में लगभग उतना कमा सकते हैं, जितना कि पार्लमेण्ट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगों की आमदनी साल में ५००) से कम है उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझ में वह शब्द 'कंगाल' है

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनिया में पैदा होता है, कि वह अपने शरीर को भला-चङ्गा रक्खे और अपने परिवार को और समाज को, देश को और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म से अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन बातों को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतन्त्रता का अवसर मिले। समाज में इन जन्म-सिद्ध अधिकारों-को काम में लाने के लिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊँचाई और अच्छाई का होना चाहिए। हमारे देश का रहन-सहन अनादि काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य से पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा यों

करता है:—"दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमें आदमी, अपने कम आमदनी के या बेसमझी के ख़र्चे के कारण ऐसे रहन-सहन से गुज़र नहीं कर सकता जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सकें। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कंगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोड़ा-बहुत अपने खाने-कपड़े के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या क़ानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"[1]

हमारी समझ में श्री गिलिन की ये परिभाषायें बिलकुल साफ़ हैं। अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के ख़र्च की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी परिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धन कुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष में ब्रिटिश राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहाँ के ऊँचे से ऊँचे आदमी को झुक जाने को लाचार कर देता है। यहाँ कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नहीं सकता परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहाँ के पहली श्रेणी के लोगों को छोड़कर बाक़ी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतवर्ष की साढ़े नन्यानवे प्रति सैकड़ा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरी से आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रों में भी इज्ज़त का ख़याल इस दरजे का है कि वे किसीके सामने हाथ पसारने से मर जाना ज़्यादा क़बूल करते हैं।

१. Gillin, J. L., "Poverty and Dependency" Pp. 24, The Century Company New York, 1926. (A. W. Hayes की Rural Sociology, Longmans, 1929, Pp. 430 पर उद्धृत)

ने अपनी आँखों के सामने अपने प्यारों का भूख से तड़पना देखते हुए भी भिक्षा माँगने का अधम काम क़बूल नहीं करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड़ की दरिद्र आबादी में तीस लाख से कुछ ही ज्यादा भिखमंगों, अचारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जों का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेंगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड़ चुके हैं, हम किन-किन कडुवे फलों का अनुभव कर चुके हैं।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पड़ता है।

१. भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गाँवों से भागकर, नजदीक और दूर के शहरों में चले गये और कुली का काम करने लगे, चाय के बाग़ों में गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशों में चले गये; और वहीं मर खप गये। इस तरह जो खेती के काम में कुशल थे गाँवों से निकल गये, और जो काम में कुशल नहीं थे रह गये, जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन बिगड़ता गया। ग़रीबी के कारण बालकों को शिक्षा न मिल सकी, और गाँवों में पढ़ाने का बन्दोबस्त न हो सका।

२. कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का बन्दोबस्त न हो सकने से, जिसमें धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गये, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते हैं, और आबादी घटती जाती है।

३. दरिद्रता के कारण अकाल पड़ जाता है, और लोग भूखों मर जाते हैं। अन्न के न होने से लोग नहीं मरते। अड़ोस-पड़ोस के बाजारों में गाड़ियों अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीड़ित भुक्खड़ों के पास ख़रीदने को दाम नहीं होता, इसीलिए भूखों मर जाते हैं। पैसे सस्ते हैं, फिर भी किसानों को कोई काम ही नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सकें। जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीने से लेकर छः महीने तक उन्हें काम रहता है, और खेत मजूरी देता है। जिस साल फ़सल नहीं होती, उस साल बारह मास की बेकारी है। मजूरी कौन दे? असल में अन्न का अकाल नहीं है। मजूरी के थोड़े अकाल में तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फ़सल भी जवाब दे देती है।

४. दरिद्रता के कारण आपस के लड़ाई झगड़े होते हैं, परिवारों में अलग गुजारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना अपना ख़र्च न सँभाल सकने के कारण उजड़ जाते हैं, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गाँव की आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषों की जड़ है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते हैं, लोग उसके दर्शनों को जाते हैं। दरिद्र को कोई नहीं पूछता।

दरिद्रता के कारण—

१. हौसले के साथ लोगों में किसान मिलता-जुलता नहीं, उसमें बेढंगापन आ जाता है।

२. धूर्तों के बहकाने में जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफ़ाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक़्त से पाता है और न। उचित मात्रा में पाता है इससे दुबला और कमज़ोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम में थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४. उसका हौसला दिन-ब-दिन पस्त होता जाता है और रहन-सहन का परिमाण घटता जाता है।

५. बाल-बच्चों के सांसारिक बोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोड़ी ही उम्र में ब्याह कर देता है और पास की नातेदारियों में ही ब्याह करके वंश को और भी खराब कर देता है।

६. ब्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार में फँस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। बच्चे बहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइस के समय काफ़ी मदद न मिलने के कारण बहुत से बच्चे सौर में ही मर जाते हैं और दूध आदि पालन-पोषण का सामान न मिलने से छुटपन ही में बच्चे माता की गोद सूनी कर देते हैं।

७. अनेक दुखिया भुक्खड़ नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, ग़रीब किसान के घर ज़बरदस्ती आकर रह जाते हैं। इस तरह उसके कष्ट और भी बढ़ जाते हैं।

८. उसका कुटुम्ब अक्सर बड़ा होता है। जितना ही बड़ा कुटुम्ब होता है सिर पीछे उतनी ही बेकारी बढ़ती है।

९. वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराब खेत ज्यादा मेहनत चाहते हैं जो वह बेचारा कर नहीं सकता।

१०. चिन्ताओं से उसका दिमाग़ ख़राब हो जाता है।

११. उसमें धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःख में घुलता रहता है, और कर्म ठोंककर रह जाने के सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर झगड़े होते रहते हैं, जिसका फल होता है फ़ौज-दारी मुक़द्दमेबाज़ी और गृहस्थी का सत्यानाश।

१४. भाँति-भाँति की चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशों की कुटेव लग जाती है। तमाखू, गाँजा, भङ्ग, शराब, ताड़ी, अफ़ीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है।

१५. औरों की निगाहों में उसकी इज्ज़त घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसानों का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते हैं। उसके पास जैसे खाने का टोटा है वैसे ही पहनने का भी। उसके पुरखों के समय में जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ों का टोटा न था, आज खाना कपड़ा दोनों का टोटा है। तीसरी ज़रूरी चीज़ घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोग कर रहा है।

अपनी दरिद्रता के कारण—

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और ख़राब-से-ख़राब अपने ख़र्च के लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है। बेचारा नमक तक खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज़ से भी कम हो, वह नमक मिर्च कहाँ पावे।

३. उसके भोजन में पालन-पोषण का तत्त्व बहुत कम होता है।

४. वह काफ़ी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चों को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६. उसके ढोर भूखों मरते हैं, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप बरसात आँधी तूफ़ान और जाड़े से बचाने के लिये काफ़ी नहीं होते।

८. जङ्गलों और पेड़ों पर कोई अधिकार न होने से उसे जाड़े के लिए काफ़ी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम से उत्तम खाद वह चूल्हे में जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलवा दिया है।

९. उसके पास काफ़ी कपड़ा नहीं है, और जो है वह विलायती है, जो काफ़ी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१०. उसकी खेती का सामान बढ़िया नहीं है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह उतना अच्छा काम नहीं ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैल से होता।

११. उसे अपने रोजगार के बढ़ाने का कोई साधन प्राप्त नहीं होता।

१२. मजूरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम

के लिए मज़दूर नहीं मिल सकते जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और वहाँ लड़कों और औरतों की मदद काफ़ी नहीं होती।

१३. अपने खेतों पर जो मजूरी की जाती है उसका बदला भी बहुत थोड़ा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोज़गार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोज़गार में सफलता नहीं मिलती।

घर गृहस्थी में किसान और उसका परिवार अपने दादा के समय में आज की तरह बेकार नहीं रहता था। खेती से जो समय बचता था उसमें मज़बूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था। गाड़ी चलाकर थोक का थोक माल बाज़ार ले जाना, खँडसालें चलाना, रुई धुनना, गाय भैंस आदि बड़े ढोर पालना, सन पटसन आदि बटना, टोकरियाँ बनाना आदि उनके तरह के काम देहातों में सब तरह के लोग करते थे। इसके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोड़ा बहुत अब भी अपना काम करते ही हैं। इनके सिवा इनके घर की स्त्रियाँ और लड़के भी तरह तरह के काम करते थे। घर की गाय, बकरी, भेड़ आदि की सेवा में लड़के बड़ी मदद पहुँचाते थे। स्त्रियाँ और लड़कियाँ दूध, दही, मक्खन आदि के काम करती थीं, आटा पीसती थीं, धान आदि कूटती थीं, मक्खन निकालती थीं, चर्खा कातती थीं। कपड़े सीना, रँगना और बच्चों का लालन-पालन चौका-बासन रसोई ये सारे काम घर में होते थे। परन्तु आज गौवों का पालन करने का सामर्थ्य न होने से दूध, दही, मक्खन, घी का काम उठ गया है। चर्खा और ओटनी को उठ गये

दो पीढ़ी के लगभग हो गये। घी दूध और कपास का काम जो घर में होता था, किसान के लिए बड़े लाभ की चीजें थीं। घी दूध से परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालों के गाँव के गाँव होते थे जो आज उजड़ गये हैं। जहाँ कहीं खद्दर बनाने की कला बढ़ी हुई थी, वहाँ कोरी, कोष्टी, ताँती और जुलाहे आदि बुनकरों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं। ये बस्तियाँ उजड़ गईं। जो थोड़ी बहुत बची हुई हैं विलायती सूत में उलझी हुई हैं। ग्वालों के गाँव के गाँव थे, जिनके यहाँ दूध घी का भी रोजगार था और खेती भी होती थी। बहुत से ऐसे गाँव उजड़ गये और जो बचे हुए हैं उनकी दशा दरिद्रता से आँखों में खून लाती है। यों गाँव-गाँव में जहाँ सभी जाति और पेशे के किसान मिलजुलकर रहते थे, वहाँ दो एक घर खद्दर बुननेवालों के भी थे, और हफ्ते के दिनों में जहाँ बाजार लगा करते थे, सूत कपास और खद्दर का लेनदेन और बिक्री हुआ करती थी। रोजगार के अच्छा होने से लोगों के रहन-सहन का परिमाण बढ़ा हुआ था। रोजगार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गाँव-गाँव में टोल थे, पाठशालायें थीं। गाँव के भय्याजी सब बालकों को पढ़ाते थे। गाँव के सभी किसान बालक थोड़ा लिखना-पढ़ना और हिसाब-किताब सीखते थे। टोलों, पाठशालाओं के खर्च के लिए माफ़ी के खेत थे। उनकी आमदनी से पढ़ाई का खर्च चलता था। गाँववाले मास्टरों को सीधे देते थे। और अधिकांश

पञ्चायत के द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढ़ाई के लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों में जगह होती थी, कहीं मन्दिरों और मठों में और कहीं-कहीं बागों में। जब पंचायतों का अधिकार छिन गया, माफ़ी खेत छिन गये, किसान दरिद्र हो गये, तब सारा बन्दोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझनेवाले किसानों ने, अधिकांश इक्कों दुक्कों ने, अपनी ओर से बच्चों के पढ़ाने का प्रबन्ध जारी रक्खा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालायें ठहरीं, परन्तु ठीक संगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग भी समाप्त हो गये। दरिद्रता के कारण—

१. गाँववाले बच्चों के पढ़ाने का बन्दोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये हैं वे बहुत कम हैं, दूर-दूर पर हैं, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुँच सकते, इसलिए देश के बच्चों की बहुत थोड़ी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़े से बच्चों को तालीम दी जाती है, उन्हें किसानों के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में शिक्षा के बारे में अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास वे साधन नहीं हैं कि काम की शिक्षा दे सकें।

३. वे अपने पढ़नेवाले बच्चों को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामों को नीच समझने लगते हैं। क़स्बों और शहरों में हलकी नौकरियों के पीछे ठोकर खाते फिरते हैं।

४. खेती की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन पर दिन खराब होता जा रहा है।

५. किसान इतने ग़रीब हैं कि बच्चों के लिए किताबें मोल नहीं ले सकते।

६. वे अपने लिए कोई अखबार नहीं ख़रीद सकते, जिससे खेती का, रोज़गार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें।

७. वे देश के आन्दोलनों की खबर नहीं रखते।

८. वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारने के लिए कोई आन्दोलन कर सकते हैं।

९. वे अपनी ओर से शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेता का काम कर सके और प्रजाहित के कामों में मदद दे।

१०. वे आपस में से किसी को नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते।

११. उनकी बहुत बड़ी संख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम हैं वे सब भोग रही हैं।

१२. बालकों को ऊँची शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलता।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है। लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता, सुधार न होने से दरिद्रता बढ़ती जाती है। दरिद्रता बढ़ते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती। यह बड़ा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमें सारा देश फँसा हुआ है।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान ख़ुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बड़ी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओं के अनुकूल बने हुए थे। गोशाला थी, बाग़, कुएँ, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था। पशुओं

के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु खुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रता के कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२. वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकड़ी न खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड़ मोल ले सकता है, न जमींदार से पेड़ लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जङ्गल से लकड़ी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेत का मालिक नहीं है, और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बे-दखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुजारी बढ़ जायगी। इसलिए खेत में सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत है। ढोरों की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गये हैं।

७. लोग गोपालन के रोजगार में टोटा होने से उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया है।

८. गो-वंश-सुधार की रीतियाँ भूल जाने से ढोरों की नसल खराब हो रही है।

९. फलों का रोज़गार ठीक रीति से न होने के कारण लोगों का ध्यान अच्छे बाग़ लगाने या बाग़ की रक्षा पर नहीं है।

१०. आपस में लड़ाई-झगड़ा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सों में बँटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लाङ्ग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नहीं है। दूसरे सब मदों में खर्च बढ़ता है, और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेती के औज़ार पुराने और दक़ियानूसी हो गये हैं, और नये और अच्छे ख़रीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानों की इतनी ख़राब है कि वे बाप-दादों की जायदाद को धीरे-धीरे खोते जाते हैं, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चङ्गुल से बचा सकें।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगों के मुक़ाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियाँ हैं, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पड़ता है कि उन्होंने हँसी-खुशी के दिन नहीं देखे हैं, और सीधे स्मशान की ओर चले जा रहे हैं। दरिद्रता के कारण—

१. अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान नहीं रख सकते।

२. कभी-कभी उन्हें खेतों में कमर तोड़ परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु साल में अधिक बेकार ही रहना पड़ता है। इस असंयम से वे बच नहीं सकते।

३. पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवनीशक्ति कम होती और रोग का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

४. रोग के कीड़े उनके शरीर में जल्दी फैलते और घर कर लेते हैं।

५. पेट के कीड़े और चुनचुने उन्हें ज्यादा होते हैं।

६. ठीक भोजन न मिलने से तरह-तरह के चर्म रोग होजाते हैं।

७. फैलनेवाले रोग जब फैलते हैं तो क़ाबू में नहीं आते।

८. किसान लोग रोग की भयानकता समझते हुए भी उससे बचने का उपाय नहीं कर सकते।

९. कपड़ा काफ़ी न होने से फ़सली बीमारियाँ होती रहती हैं।

१०. घरों में काफ़ी बचाव नहीं होता।

११. मलेरिया से बचने के लिए वे मसहरियाँ इस्तैमाल नहीं कर सकते।

१२. घरों में हवा और रोशनी का काफ़ी बन्दोबस्त नहीं हो सकता।

१३. खाने-पीने के लिए पानी बहुत गन्दा आता है। साफ़ और शुद्ध जल का बन्दोबस्त अनेक स्थानों पर नहीं हो सकता! तालाब का पानी हर तरह पर गन्दा होता है और कुएँ गहरे नहीं होते तो परनालों की गन्दगी कुएँ के पानी में मिल जाती है। शुद्ध पानी का खर्चीला बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता।

१४. स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा उन्हें नहीं मिलती।

१५. बच्चे बड़ी संख्या में मरते हैं।

१६. दवा-इलाज की सहायता नहीं मिलती।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गाँवों में नहीं मिलते। बीमार होने पर दवा-इलाज का खर्चा उठा नहीं सकते।

१८. अस्पताल बहुत दूर पड़ते हैं।

१९. देहातों में घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते हैं, न काफ़ी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगों की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१. शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिएँ उनमें मुख्य नमक है। जो अनेक रोगों से रक्षा करता है, यह नमक आदमी को काफ़ी नहीं मिलता, और ढोरों को तो बिलकुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानों की थोड़ी आमदनी के लिए वह बहुत महँगा है।

२२. ढोरों में बीमारियाँ फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहाँ ढोर बाँधे जाते हैं वहाँ की काफ़ी सफ़ाई किसान नहीं कर सकता।

२४. बीमारियों से ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरों में बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसान का कई तरह का नुक़सान हो जाता है।

२५. ढोरों की बीमारी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गाँव का बन्दोबस्त पंचायत के हाथ में था, गाँव में वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बन्दोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम जानते थे। धाय का काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चों वाली लुगाइयाँ इतना काफ़ी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थीं। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई, और बस्ती के उजड़ने से भी परम्परा और अभ्यास दोनों की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय में तो पिछले पृष्ठों में हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रक़में और उसके वसूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके हैं। सारी दरिद्रता का कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-कर के सम्बन्ध में किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण—

१. सिंचाई का वह काफ़ी प्रबन्ध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३. पैदावार के मुक़ाबले लागत ख़र्च खेती में ऊँचा पड़ता है, क्योंकि वह अच्छे औज़ार नहीं काम में ला सकता। उसके खेत दूर-दूर हैं और टुकड़े टुकड़े हैं। उसके बैल दुबले हैं, और अनाज इसीलिए कम उपजता है।

४. ज़रूरत पड़ने पर उसके पास कोई जमा नहीं है, जो लगा सके। पहले ज़माने में उसकी औरत के गहने उसके लिए बैंक के समान थे। अब वह गहने भी नहीं बनवा सकता।

५. लगान या मालगुज़ारी देने के समय उसे लाचार होकर साहूकार से क़र्ज़ लेना पड़ता है, और खेत रहन रखना पड़ता है। किसानों पर लगभग आठ अरब के क़र्ज़ लदा हुआ है।

६. आये दिन की मुक़द्दमेबाज़ी से किसान परेशान रहता है, और अधिक से अधिक लुटता जाता है।

७. गाँजा, ताड़ी शराब की कुटेव में फँसता है, और तन मन धन और धर्म सब खो देता है।

८. शादी-ग़मी, काम-काज में वह अपनी हैसियत से ज़्यादा ख़र्च करता है, और क़र्ज़ से लद जाता है।

९. वह अपने लिए ज़रूरी कपड़े भी नहीं ख़रीद सकता। उसकी ख़रीदने की ताक़त बहुत कम हो गई है।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े के शुरू में दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते हैं, और जाड़ा बीत जाने पर बड़ी कड़ाई से वसूल कर लेते हैं।

११. खेती के और समान भी वह नक़द नहीं ख़रीद सकता। उधार के कारण उसे बहुत ठगाना पड़ता है।

१२. खेत की उपज दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज बनाये रखने के लिए उपाय नहीं कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊँची है कि आधे से ज़्यादा खेत का मुनाफ़ा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का ख़र्चा और उसपर का सूद मुश्किल से मिलता है। फ़सल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४. वह काँग्रेस का चन्दा नहीं दे सकता, और अपना प्रतिनिधि काँग्रेस में नहीं भेज सकता।

१५. गाँव में शिक्षा रक्षा और मन-बहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नहीं कर सकता।

१६. बुढ़ापे के लिए और अनाथों और विधवाओं के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं कर सकता।

१७. आग लगने पर, बाढ़ आने पर और ओले पड़ने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहाँ है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज़ है। इतनी थोड़ी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है, और ज़रूरतों की कोई चरचा नहीं।

१९. वह साल में औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फ़ुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण इससे फ़ुरसत का सुख वह नहीं उठा सकता।

२०. उसके अनेक रोज़गार छिन गये हैं। विदेशियों की चढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोज़गारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बन्द हो गया है। खँडसालें बन्द हो गई हैं, गोचर-भूमि के खेत बन जाने से और जीते हुए गाय-बैल के मुकाबले में चमड़ा, मांस, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज़्यादा दाम मिलने के कारण गोवंश का नाश हो गया, और ग्वालों का रोज़गार चौपट हो गया। ये सारे रोज़गार नष्ट हो जाने से किसान के आधे जीवन पर बेकारी की मोहर लग गई।

किसान की माली हालत लिखने लायक़ नहीं है। देखने को आँखें नहीं रह गई हैं। सोचने से कलेजा मुँह को आता है। इस माली हालत को हम शून्य नहीं कह सकते। यह शून्य से इतना कम है, कि आठ अरब रुपयों के आगे ऋण का एक बहुत मोटा-सा चिन्ह लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रता के कारण नहीं है, बल्कि सारी दरिद्रता का कारण है।

९. धर्म पर प्रभाव

धन का उपभोग करते हुए जो आदमी संसार को असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परन्तु संसार में

विरक्त बहुत थोड़े हैं और होने भी चाहिएँ। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी संसार में थोड़े ही होते हैं। सबसे ज्यादा संख्या संसार में गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाक़ी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक ज़िम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बड़ा ही धार्मिक था। उसके द्वार से मंगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अङ्ग थे। संसार में उसके बराबर सफ़ाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत् में प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहाँ स्त्री जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मां, बहन, बेटी समझता था। नशेबाज़ी की तरफ़ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ संसार के किसान मांस खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिंसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझकर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम धर्म मानता था। गाँवों की विशेष रूप से और पशुओं की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत में मांस खानेवाले न थे। परन्तु संसार में और देशों के मुक़ाबले हमारे देश से मांस खाने की चाल बहुत कम थी, और इस कमी के कारण हमारे यहाँ के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रता के कारण—

१. वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२. तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

४. पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामों में शिथिलता आने से उसके मन से धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मन्दिरों में दर्शनों और जल चढ़ाने के लिए बहुत कम जाता है।

५. खेती के सम्बन्ध में होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।

६. पुरोहितों की रोजी उनका मान कम होने से बहुत करके जाती रही।

७. कथा-पुराण से उसे बड़ी शिक्षा मिलती थी, परन्तु व्यास को दक्षिणा देने के लिए अब उसके पास कुछ नहीं है।

८. मन्दिरों और शिवालयों की दशा अश्रद्धा के कारण खराब हैं। आजकल के सुधारक सम्प्रदायों ने जो धार्मिक खर्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह बिना उन धार्मिक सम्प्रदायों में सम्मिलित हुए, उनकी किफ़ायती रीति वर्तने लगा है। धार्मिक बातों में उसपर किसी का दबाव नहीं है। सामाजिक बातों में समाज के दबाव के कारण ही वह काम-काज में बहुत खर्च करने को लाचार हो जाता है।

९. गाँव में अब पुरोहित का होना जरूरी नहीं रह गया है।

१०. धार्मिक मेलों और पूजाओं में दिन-पर-दिन इकट्ठे होने वालों की गिनती घटती जाती है।

११. मेलों में जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था। वह मनबहलाव भी करता था और पशु और अपने खेती के सामान आदि भी खरीदता था। पर आज पैसे बिना उसका मेला फीका है।

१२. वह मुकद्दमाबाजी में फँसकर धूर्त, झूठा, दग़ाबाज़ और बेईमान हो गया।

१३. उसे अपने स्वार्थ के लिए आज हत्या करने आग लगाने ज़हर देने आदि पापों से हिचक नहीं है। वह भूख के मारे खूँखार

हो गया है। किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है। देखने में वह अहिंसक अब भी है, परन्तु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है। उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमज़ोरी।

१४. किसान का अन्तरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामों से रोकता है, परन्तु वह अन्तरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपने को तमाखू, भाँग, गाँजा, अफ़ीम, ताड़ी, शराब आदि नशों से बेहोश कर लेता है, और तब दुराचार में लगता है।

१५. वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियों का उसकी निगाहों में पहले का सा सम्मान नहीं रह गया है।

१६. स्त्रियाँ बेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझतीं, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकतीं। आये दिन घर में झगड़े होते रहते हैं, और उनका निरादर होता रहता है।

आजकल नास्तिकता के ज़माने में धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पंडितम्मन्य पाठक मुस्करायेंगे। परन्तु जहाँतक लेखक को मालूम है, रूस को छोड़कर संसार के सभी देशों में किसान के कल्याण के लिए उसमें धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी हैं, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग समझते हैं।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह से सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ तो कला की चर्चा ही वृथा है।

ऐसा भी कोई न समझे कि कला की जरूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला में शामिल है। इन सब बातों का आदमी की आयु की कमी-बेशी पर प्रभाव पड़ता है। दरिद्रता के कारण—

१. खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गये हैं। भूखे पेट खेल क्या होंगे?

२. बच्चे भी भूखों चिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नहीं होते।

३. बालजीवन सुखमय नहीं है।

४. बच्चों को खिलौने नहीं मिलते।

५. मेले-तमाशे बहुत कम होते हैं।

६. पैदल दूर की यात्रा करने का हौसला नहीं है, क्योंकि खाने को नहीं है, और मार्ग का सुभीता नहीं है।

७. शाम को कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित हैं और न अनुभवी।

८. लोगों को जीवन में रस नहीं रहा, लोग फूल के पेड़ नहीं लगाते, गमले नहीं रखते और घर-द्वार सँवारने का शौक़ नहीं रहा।

९. स्त्रियों को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक़ नहीं रहा।

१०. तीज-त्योहारों पर गाने-बजाने का शौक़ घट गया है, दीवाली और फाग में अब वह पहले की-सी उमंग नहीं है।

११. संसार की वस्तुओं के सौन्दर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनाने का हौसला नहीं है।

१३. जीवन की गाड़ी को घसीटकर मौत की मंजिल तक किसी तरह पहुँचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य में भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सांसारिक जीवन में कोई रस नहीं पाता और ऊब कर परमात्मा में चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन से ऊब गया है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसका चित्त परमात्मा में लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सबसे बड़ी ज़रूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योंकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहाँ की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह माँस खाने वाले को बकरी। परन्तु विदेशी हुकूमत की नीति उसीके लिए अन्त में घातक है। मुर्गी से एक सोने का अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अंडे एक साथ ले लेना, अथवा अंडे देने की ताक़त को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नहीं है। विदेशी हाकिमों में अंधे स्वार्थ के मुक़ाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात में लगा देते कि भारत की खरीदारी की ताक़त नित्य बढ़ती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहाँ

के स्वार्थी सिविलियनों के द्वारा भारत के धन को फ़िजूलखर्ची में न लगाते। भूमि-कर बहुत हलका लेते। किसान सुखी रहता, वह विलायत का बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायत के माल तैयार करनेवाले शायद आजकल से अधिक धन खींच ले जाते। शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग व्यापारियों की नीति अन्त में उन्हीं के लिए घातक होती है। इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ असह्य होगया है। दम नाकों में आगया है। एक-एक क्षण की देर उनके लिए दूभर है। उनकी ख़रीदारी की ताक़त नष्ट हो जाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा में है। दरिद्रता की दशा में पाप और व्यभिचार का परनाला देहातों से बह-बहकर चारों ओर से शहरों में आकर सिमटता है, जहाँ बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी हैं। फल यह होता है कि दरिद्र देहातों से घिरे हुए शहर गन्दगी की खान होजाते हैं।[1] शहर वालों पर प्रत्यक्ष कर कम लगे हुए हैं, उनको

१. मिस मेयो ने अपनी अमर अपकीर्ति "मदर इण्डिया" में जो भारत के गंदे चित्र खींचे हैं उनकी अत्युक्ति को भी हम सच मानलें तो वह विदेशी शासन की घोरतम निन्दा हो जाती है। इसके लिए मिस मेयो के ही देश के खेती के सम्पत्तिशास्त्र के भारी-भारी विद्वान और प्रामाणिक लेखक एक स्वर से यही कहते हैं कि दरिद्रता के कारण सभी तरह के पातक और गन्दगियाँ होती हैं, जो शहरों को भी खराब कर डालती हैं। इसके महाकारण—अर्थात् दरिद्रता—के लिए देश की सरकार ही ज़िम्मेदार होती है। जो पाठक स्वयं इस विषय को देखना चाहें वे इन प्रमाणों को स्वयं पढ़ लें—Articles Contributed by

(1) Richard T. Ely, Research Professor of Economics and Director of the Institute for Research in Land Economics and Public Utilities.

दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनों में सहज ही फँस जाते हैं। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने में विदेशी सरकार आसानी से खर्च कर देती है, जिनसे असल में किसानों को लाभ नहीं होता। एक ओर तो करोड़ों किसान दाने-दाने को तरसते हों, और दूसरी ओर १४ करोड़ रुपये लगाकर बिना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल बनते हों, यह हद दर्जे की निठुराई है। शहरों में पानी के बन्दोबस्त के लिए या बिजली का बन्दोबस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह बहा दिये जाते हैं। किसान का बोझ हलका करने के लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोष दिखाये हैं। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोष दूर हो सकते हैं। सुधारक लोग हर दोष को दूर करने के लिए अलग-अलग उपाय करते रहते हैं, पर उन्हें सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैवन्द लगाने से काम नहीं चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड़ का पोषण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करने वाली सरकार को दूर करे और अपना बन्दोबस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

---

(2) O. F. Hall, Professor of Sociology, Purdue University.

(3) John A. Ferrell, M. D. International Health Board, and

(4) C. E. Allred, Professor of Agricultural Economics, University of Tenessee.

in "Farm Income & Farm Life" Published by the University of Chicago Press, 1927, pages. 155-189.

A. W. Hayes: *Rural Sociology*, Longmans, Green & Co. : 1929, Chap XVIII. P P. 430-457

: १२ :

और देशों से भारत की खेती का मुक़ाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है इस बात से किसी को भी इनकार नहीं है, परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते हैं वे अक्सर जापान और योरप का नमूना पेश करके चाहते हैं कि हमारा देश भी इन्हीं देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय में सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते हैं कि हमारे संयुक्त-प्रान्त में गेहूँ सींचे हुए खेत में १२ मन प्रति एकड़ और बिना सींचे हुए में ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाडा में १३ मन और जर्मनी में १७ मन होता है। इंग्लिस्तान में एकड़ पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि इनमें से किसी देश में विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चूसकर पराये देश में नहीं चला जाता, अपने देश की सरकार तन, मन, धन से अपने देश के ही हित में लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा में हित का विरोध होता है, प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है। फिर इन देशों में सुधार के होने में देर क्यों लगे? इसमें सन्देह नहीं कि खेती की कला में संसार में किसी समय भारत सबसे आगे था, परन्तु आज विदेशी हुकूमत की बदौलत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड़ जाने का है उसके होते अपनी खोई दशा को पा जाना कैसे सम्भव है? फिर भी इस प्रकरण

में सुधारकों की शंकाओं के समाधान के लिए हम कुछ देशों से मुक़ाबिला करेंगे। खेती के सम्बन्ध में अमेरिका संसार में सबसे बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है। पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे।

२. अमेरिका की खेती

'अमेरिका' साधारण बोलचाल में अमेरिका के संयुक्तराज्यों को कहा जाता है। किसी ज़माने में, जिसको आज तीन सौ बरस के लगभग हुए, इंग्लिस्तान में किसानों पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयों के 'भाई सम्प्रदाय' पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय 'भाई सम्प्रदाय' वाले हज़ारों परिवार पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका में चले गये और बस गये। जिस प्रदेश में बसे उसका नाम 'नया इंग्लिस्तान' रक्खा। उसके बाद अपना देश छोड़-छोड़ सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका में जाकर बसने लगे। धीरे-धीरे 'नये इंग्लिस्तान' की तरह अनेक नये उपनिवेश बन गये, जिनमें अंग्रेज़ी बोलनेवालों की संख्या ज़्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेजों की जायदाद बन गये और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जब धन चूसने की क्रिया अपनी हद को पहुँच गई तब वहाँ स्वदेशी और बहिष्कार का आन्दोलन चला, और अन्त में स्वतंत्रता का युद्ध हुआ, जिसमें इंग्लिस्तान एक तरफ़ था और बहुत-से संयुक्तप्रदेश वाशिङ्गटन के नेतृत्व में दूसरी तरफ़ थे। अन्त में वाशिङ्गटन विजयी हुआ और सम्वत् १८३३ में ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ़ सौ बरस हो गये। मोटे तौर से यों समझना चाहिए कि उन्हें स्वतंत्र हुए जितना समय बीता, हमें परतंत्र

हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीनों की उन्नति का आरम्भ हुए भी लगभग ७५ बरस बीते हैं, और लगभग ६० बरस पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की खेती है। स्वतंत्र अमेरिका को इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचने में ६० बरस लगे हैं। भारतवर्ष की बात जाने दीजिए, क्योंकि वह पराधीन है। परन्तु इंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस तो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं, परन्तु उन्होंने भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाब मिल जायगा।

अमेरिका की आबादी प्रायः गोरों की है, वह शहरोंवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आबादी साढ़े ग्यारह करोड़ है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज ३८ आदमी के लगभग बसते हैं। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आबादी पैंतीस करोड़ के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २६६ आदमी बसते हैं। इस तरह भारतवर्ष की बस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानों की आबादी भारतवर्ष में तीन-चौथाई है, और जितने लोग खेत के सहारे गुजर करते हैं वे सैकड़ा पीछे नब्बे के लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानों की आबादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश में २३४ किसान बसते हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुक़ाबिले खेती के लिए धरती कम है और खेती के सहारे जीनेवाले अत्यधिक हैं। संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी में खेती करनेवालों की गिनती बाईस करोड़ साढ़े नब्बे लाख के लगभग थी। कुछ ज़मीन जिसमें खेती

होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ के हैं। इस तरह भारत में किसानों के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड़ की खेती पड़ती है। संवत् १९९९ में अमेरिका में किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड़ के खेत थे और सिर पीछे २० एकड़ परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। सम्वत् १९०७ में कुल आबादी के ६३ प्रति सैकड़ा किसान थे, संवत १९७७ में आबादी २९ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुक़ाबिले में खेती की आर्थिक स्थिति बराबर गिरी हुई रहती है। "इसका अर्थ यह है कि इस संसार की बड़ी-बड़ी मण्डियों में अमेरिका के उद्योग-व्यवसाय को बढ़ा-चढ़ा रखने के लिए वहाँ की खेती का बलिदान करना पड़ेगा।"[१]

भारत में सिर पीछे जो एक एकड़ की खेती का औसत बैठता है उसमें भी छोटे-छोटे टुकड़े हैं और वे टुकड़े दूर-दूर पर हैं। अमेरिका में सैकड़ों एकड़ की इकट्ठी खेती एक साथ है जिसकी जुताई-बुवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने में किफ़ायत होती है। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि रोज़गार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी बैठेगी और उसी हिसाब से मुनाफ़ा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतन्त्र देशों में भी जिन देशों की आबादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम ज़मीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुक़ाबिले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके

१. Farm Income & Farm Life : The University of Chicago Press, 1927. p- 106.

यहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधीनता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढ़ने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत में है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुक़ाबिले उन उपनिवेशों में ही अच्छी है जहाँ गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ़ सकती है।

अमेरिका में पहले आबादी भी थोड़ी थी और मशीनों की चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफ़रीका के हबशियों को गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तार से खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज्यादा आदमियों की ज़रूरत होती है, इस लिए वहाँ मशीनों की चाल चल जाने से आदमियों की ज़रूरत घटती गई। पिछले साठ बरसों में से पहले तीस बरसों में अधिक काम मशीनों के प्रचार ने किया। यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा। विक्रमी की बीसवीं अर्धशताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिका वालों का जो जोश ठण्ढा पड़ गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा। पिछले तीस बरसों में यह जागृति ज़ोरों से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत ज़ोरों से चढ़ने लगी और लोग खेती की ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा। तब फिर से कृषि महा-विद्यालय और कृषि-विभाग की जाँचवाले दफ़्तर खुल गये। आवाज़ उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक जबरदस्ती पहुँचाये जाने चाहिएँ। खेती के विशेषज्ञ ज़िले के एजेण्ट और खेती के संवादपत्रों

ने इस काम को उठा लिया। रेल की गाड़ियों में और मोटरों में सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बड़ी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो; अपने देश की खेती के बढ़ाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढ़ाने के प्रश्न पर अमेरिका के मनुष्य का जितना दिमाग़ और जितनी ताक़त पिछले १५ वर्षों में लगाई गई है, इतिहास में कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।[1] पंजाब के गुड़गाँव के डिपुटी-कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढँग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हें सफलता न हो पाई। कौआ चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका में जो काम होता है उस पर किसानों का पूरा विश्वास है। यहाँ सरकार में और किसान में भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफ़सरों का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफ़सरी के ज़ोम पर। उनकी नीयत बड़ी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलङ्क अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार में मालगुज़ारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक-से-अधिक वह भी पैवन्द लगाने का काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये हैं कि जहाँ जड़ ही ख़राब है वहाँ पत्ते-पत्ते की सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुज़ारी कम की जाय, जंगल बढ़ाये जायँ और

१. Farm Income and Farm Life : The University of Chicago Press 1927, P. 115.

किसानों का उनपर अधिकार रहे।[१] लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार में ब्रेन के दिमाग़ की अवहेलना की।

अमेरिका में जितने सुभीते हैं, उतने सुभीते जिस देश में हो जायँ उसी देश की खेती दिन-पर-दिन बढ़ती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप से ये हैं :—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहाँ खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही खर्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे बेदख़ली का या इज़ाफ़ा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोड़े-से-थोड़े कर में उसे ज्याद-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी ज़रूरी चीज़ें हैं वे उसके पास क़ाफ़ी से ज्यादा है।

(५) उसके पास रोज़गार का काम लगातार साल भर के लिए है, और वह अपने लिए क़ाफ़ी कमाई करके फ़ुरसत की घड़ियों का सुख भी लेता है।

(६) सारे परिवार के लिए मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के सम्बन्ध की सब तरह की शिक्षा के सुभीते उसे मिलते हैं।

(८) सफ़ाई, मकान और तन्दुरुस्ती की रक्षा के सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त हैं।

१. F. L. Brayne. Village uplift in India. Pioneer Press, Allahabad, 1927, PP. 64-66, & ५.

(९) बाहर की आमद-रफ़्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते हैं।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकड़ा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रक़बे की खेती ये दोनों बातें शामिल नहीं कीं। हमारे देश में बड़े रक़बे मिल नहीं सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देखकर उनपर हज़ार जान से फ़िदा हो रहे हैं हम उन्हें यह याद दिलाना चाहते हैं कि जो मशीन दो सौ आदमियों की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एक सौ निन्यानवे आदमियों को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनों की ज़रूरत वहाँ पड़ सकती है जहाँ आदमी कम हों और काम ज्यादा हो। हमारे देश में इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा हैं और उनके लिए काफ़ी मजूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनों का काम बड़े पैमानों पर होता है। हमारा देश ऐसी स्थिति में है कि खेती के काम बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता। इस रोज़गार को बड़े पैमाने पर करने में भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बड़े पैमाने पर होने से भारत में बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढ़ती ही जायगी। यदि सम्पत्तिशास्त्र को संसार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटादें तो हमें यह कहना पड़ेगा कि कलों का प्रयोग वहीं तक कल्याणकारी है

जहाँतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यों को काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानों की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग संसार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे हैं। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना में उलझे हुए हैं कि औद्योगिक लूट बराबर जारी रहेगी और लुटनेवाले संसारी जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी बन्द न कर सकेंगे, परन्तु यह भारी भ्रम बहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक़ हैं हम ज़रूर सीख लेंगे। हम जितने सुभीते गिना आये हैं, भारत के लिए हम वे सभी सुभीते चाहते हैं।

वर्तमान समय में हम मोटरों पर चलनेवाले किसानों और मजूरों की तरह अपने यहाँ के किसानों और मजूरों को विमानों का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते। "भोजन सादा हो परन्तु भरपेट मिले, और पशुओं और अतिथियों तक के खिलाने के लिए बच जाय। भरसक खेतों की ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भाँति-भाँति का चाहे न भी मिल सके। खद्दर सस्ता हो जिससे शरीर की रक्षा हो सके और सर्दी से बचाव हो, चाहे महीन मुलायम और सुन्दर न हो परन्तु ज़रूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकानियत काफ़ी हो, चाहे उसमें सजावट और सुघराई न हो तो भी सफ़ाई पूरी रह सके। बहुत थोड़े से खर्च में शिक्षा मिले, पुस्तकें मिलें और सब तरह के मनबहलाव का सामान हो जाय। सामाजिक काम भी बिना बाधा के हो सकें। जोखिमों का बीमा भी

होता रहे और धरती पर के जीवन के लिए और भी कुछ थोड़ी-बहुत वे-ज़रूरी वातें भी सुलभ हों। संसार के अधिकांश किसानों को इससे ज्यादा सुभीते नहीं हैं। अधिक लोगों को तो असल में इनसे बहुत कम हैं। यह एक बहुत दिनों से पक्की वात है कि पीढ़ियाँ-पर-पीढ़ियाँ गुज़रती गई हैं, और जीवन के इन परिमाणों से सन्तुष्ट रह-कर वे केवल किसान ही नहीं बने रहे वल्कि जितना हमें चाहिए था उतने से अधिक उपजाते भी रहे। इससे बढ़कर इस बात की कोई गवाही हो नहीं सकती कि जीवन के इससे अधिक ऊँचे परिमाणों की असल में ज़रूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति में इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नहीं की जा सकती थी।" [१] हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते हैं जिसमें कि ईमानदारी से रहकर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनवाज़ी के फन्दों में न फँसे, सूचीपत्रों से अपने को न ठगावे, ठगों की तस्वीरों और मोहिनी बातों पर लुभा न जाय। इश्तिहारी रोज़गारों का शिकार न बने, और विलासिता में न फँसे। अमेरिका के किसानों के ये थोड़े से दोष हैं जिनसे बचना होगा। दलाली, मुक़दमे-बाज़ी, जुआ, चोरी, नशा, आलस्य, गुण्डापन, व्यभिचार आदि से, जो हमारे किसानों में दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं, उसे बचना होगा।

३. डेनमार्क की खेती

संसार में अमेरिका की खेती सबसे बढ़ी-चढ़ी है, परन्तु जैसा

१. Alexander E. Cance, Professor of Agricultural Economics, Massachusetts Agricultural Colleg in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927. P. 78.

हम देख आये हैं यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढ़ाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानों को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में पर्यटन कराया। यूरोप में खेती के व्यवसाय में अमेरिका वालों ने डेनमार्क को सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा पाया, और अनेक बातें इस छोटे से देश से सीखीं। यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्क की चर्चा करते हैं तो असल में उस देश की चर्चा करते हैं जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि संसार में खेती की उन्नति के लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप के 'लीग ऑफ़ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) की ओर से (दी रूरल हाईजीन इण्टर चेञ्ज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर विनिमय विभाग ने स्वास्थ्य-संगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकायें निकलवाई हैं। डेनी सरकार के खेती के विभाग के मंत्री श्री एस० सोरन्सेन ने डेनी खेती पर एक बड़ी अच्छी पुस्तिका लिखी है। उसकी भूमिका में डाक्टर वूद्रो ने लिखा है, कि जहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नींव पर जमी हुई नहीं है वहाँ तन्दुरुस्ती की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रों को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारें, और डेनमार्क की तरह खेती और किसानों की उन्नति करें। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग सम्बन्धी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसंग में हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पिछले पृष्ठों में हमने जो दरिद्रता का सम्बन्ध रोगों और मौतों की बढ़ी हुई संख्या से दिखाया है वह संसार में निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेनमार्क खेती में जितना ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है, उतना ही

विस्तार में छोटा है। यह समुद्र-तट पर बसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है। उसकी आबादी ३४,६७,००० प्राणियों की है। इस देश से क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का अवध प्रान्त ड्योढ़ा बड़ा है, और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त बराबर है। भारत में इससे छोटे प्रान्त केवल दिल्ली और अजमेर के हैं। आबादी में सीमा-प्रान्त का ड्योढ़ा है, और सिन्ध प्रान्त से कुछ कम है। अमेरिका के मुक़ाबले में यहाँ की आबादी ज्यादा घनी है। ये अङ्क हमने संवत् १६८५ के दिये हैं। डेनमार्क में देहातों की आबादी सैकड़ा पीछे ५७ है। इसमें से सभी खेती नहीं करते। खेती के सम्बन्ध के सारे काम करने वालों को गिनें तो किसानों की आबादी सैकड़ा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमें से खेत के मालिकों के क़ब्ज़े में १,७७,००० खेत हैं। पट्टे पर २,२०७ हैं। लगान पर ८, ५५१ हैं। इस तरह कुल खेती में ६४ प्रति सैकड़ा लोगों की अपनी मिल्कियत है, बाक़ी ६ प्रति सैकड़ा पट्टे या लगान पर हैं। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड़ तक के हैं, परन्तु सबसे बड़ी संख्या २५ एकड़वाले खेतों की है। उनके बाद ७५ एकड़वालों की संख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि आठ एकड़वालों की है, इस तरह असल में वहाँ थोक खेती ज़्यादा है। किसानों की आबादी के हिसाब से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहाँ से कहीं ज़्यादा है। सत्तरह-सत्तरह एकड़ की जोतें छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती है।[१] हमारे यहाँ जिनके पास १७ एकड़ खेत हैं वे १७ भिन्न-भिन्न

१. 'Small Holdings in Denmark' by L. Th. Arnskov, Danish Foreign office Journal, 1924. (Dyioa and Jeppesen). Danish Agriculture (Statistics), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V.

जगहों में बटे हुए भी हैं। थोक के थोक इकट्ठे नहीं हैं। संवत् १६७७-७८ और ७६ में वहाँ एकड़ पीछे लगभग १२०३) रुपये दाम देने पड़ते थे। जिन लोगों के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हें बढ़ाने के लिए, और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते थे, उन्हें खेतों को खरीद लेने में वहाँ की सरकार ने बहुत कम ब्याज पर और उन खेतों की ही जमानत पर उधार रुपये दिये, और किसानों को खेतों का मालिक बनाया। यह उधार के रुपये भी वसूल करने का ढंग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तों में साल-साल पर किसान लोग अदा करें, जिसमें कई बरसों में वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानों की मिल्कियत भी पक्की पोढ़ी हो जाय। डेनी सरकार ने किसानों के साथ केवल इतनी रिआयत ही न की बल्कि उनका संगठन कराने में, सहयोग समितियों के बनाने में उनकी उपज को चोखा बनाने में, और संसार की मण्डियों में, उनके माल के अच्छे-से-अच्छे दाम खड़े कराने में पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते हैं कि डेनों के देश की समाई इतनी कम होने पर भी संसार की मण्डियों में एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सुअर का मांस, और दसवाँ भाग अंडे वह कहाँ से लाकर बेचता है। श्री सोरन्सेन इस रहस्य को थोड़े ही में खोल देते हैं। डेढ़ सौ बरस के संगठन और घनी खेती का यह फल है, और इतना कह देने में जरा भी गलती का डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काम में बड़े कुशल और शिक्षित हैं और उनका सामाजिक और मानसिक परिणाम बहुत ऊँचा है।

हमारा भी तो इन्हीं डेढ़सौ बरसों का रोना है। जो देश स्वाधीन

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना संगठन और उत्थान आरम्भ किया; उसी समय भारत के पाँवों में बेड़ियाँ पड़ गईं, और उसके शरीर में ख़ून चूसकर बाहर जानेवाली जोंकें लग गईं। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क में उसी समय उसी तरह का ग्राम-संगठन था जैसा कि भारत में। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमें गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना क़ानून खुद बनाते थे। उनकी क़ानून की किताब में खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले सालभर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव में हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मंच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय कर ली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे-छोटे प्रश्नों से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत में होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मुक़-दमे फ़ैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पचायतें बड़े अदब क़ायदे से होती थीं। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पंचायती पाठशाला आदि पंचायत की चीज़ें थीं। किसी के लड़का हो या न हो, पर हर गाँववाला पढ़ानेवाले के भोजन के ख़र्च में हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़नेवाला लड़का फ़ीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गाँव अपने स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमींदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था और मजूरों और आसामियों के साथ गुलामों का-सा बर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा में धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षों में सुधारों का वेग बहुत बढ़ता गया। जहाँ-जहाँ जमीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहाँकी जमीनों पर जंगल लगा दिये गये। जहाँ-जहाँ हो सका पशुओं का चारा उपजाया जाने लगा। घासों के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। बाज-बाज फसलें पाँचवे, बाज छठवें और बाज सातवें साल अच्छी होती थीं। अदला-बदली करके इस तरह पर वहाँ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज की उपज सबसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज बोई जाती थी। यह तो खेती की बात हुई, जिसमें कि उन्होंने ऐसी तरक्की की कि बढ़ते-बढ़ते एकड़ पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनों का गाहक पहले इंगलिस्तान था, परन्तु मण्डी में और मुल्कों की चढ़ा-ऊपरी से डेनों की अनाज की खपत कम होगई। उस समय डेन हताश नहीं हुए, वे गोवंश को पहले ही से सुधार रहे थे। जब अनाज की बिक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोजगार करना शुरू किया, गायें पालीं और बछड़े भी पालने लगे। भारत में बैल बड़े काम के जानवर हैं, खेती उन्हीं के बल पर होती है; परन्तु डेनमार्क में ढुलाई और जुताई आदि का काम घोड़ों से लेते हैं, इसलिए गोमांस-भक्षी अंग्रेज ग्राहकों को वे बैलों का माँस देने लगे। माँस, चर्बी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे, और

अंडों के लिए मुर्ग़, वत्तक आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की विक्री घटने पर गोमांस, शूकर-मांस, चर्वी, चमड़ा, मक्खन, अंडे इत्यादि की विक्री वढ़ाई। इस वात में डेनी सरकार से उन्हें वहुत वड़ी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सव चीजों की विक्री डेनमार्क की बहुत ज्यादा है। और ये सब चीजें खेती की उपज समझी जाती हैं। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँखार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सव-से वड़ी चीजें दो हैं:—एक तो सहयोग-समितियाँ और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियों की चर्चा भारतवर्ष में बहुत चल रही है। उनके क़ानून भी वने हुए हैं। देश में गवर्मेण्ट की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है। परन्तु हमारे देश में और डेनमार्क में यह भारी अन्तर है कि डेनों की सहयोग-समितियाँ गाँव की पंचायतों से पैदा हुई हैं, और वहाँ की सरकार ने उन्हें अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पंचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको वहुत जल्दी सौ वरस के लगभग हो जायँगे, और कोई छव्वीस वरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग-समितियों की वुनियाद डाली और उन्हें अपने जोर से फैलाया, परन्तु उनमें इतने वंधेज रक्खे कि हमारे गरीव किसान उनको अपना न पाये। वहाँ सहयोग समितियों की वुनियाद नीचे से पड़ी थी, और यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह साफ़ है कि कौनसी वुनियाद मज़वूत हो सकती है। वहाँ के किसानों ने सव तरह की समितियाँ वनाई हैं, जिनका आरम्भ पहले पहल 'मक्खन निकालनेवाली समिति' से हुआ। संवत १९३९ में कुछ द्ररिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले

पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदह सौ समितियाँ हैं। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की, लेनदेन की, सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई हैं। इन पर सरकारी नियंत्रण नहीं है, परन्तु सरकार में इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते हैं, और इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों में मुक़दमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओं' में है। पादरी ग्रुण्ट फ़िग ने ६० बरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओं का आरम्भ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी—"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठ-शालायें खुलें जिनमें देश के युवक पढ़ सकें। वहाँ वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सकें, और विशेष कर अपने को ख़ूब समझ सकें। वहाँ वे गाँवों में रहनेवालों के कर्तव्य और सम्बन्ध अच्छी तरह समझ सकें, और देश की ज़रूरतें भी अच्छी तरह जानें। मातृ-भाषा की गोद में उनकी देशभक्ति पलेगी, और डेनी गीतों में उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हमारे लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होंगे।"[१]

सचमुच इसी अमृत के कुंड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला। वहाँ ऐसे साठ मदरसे हैं, जिनमें लगभग सात हज़ार शिक्षार्थी हैं। ये १८ बरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियाँ हैं। पाँच महीने में युवकों की पढ़ाई समाप्त होती है, और तीन महीनों में युवतियों की। ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढ़े मदरसों

१. Quoted from S. Sorensen : Danish Agriculture. League of Nations. 1929. P. 26-27

में भर्ती होते हैं, और खेती की ऊँची-से-ऊँची विद्या इस थोड़े काल में पढ़कर पण्डित हो जाते हैं।

संक्षेप से डेनमार्क में भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतों की चर्चा हम अमेरिका के सम्बन्ध में कर आये हैं। यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं है। अमेरिका से फ़र्क़ इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती बढ़ी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती में बढ़े-चढ़े हैं। अमेरिका में खेतों का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा बहुत ज्यादा है। इन दोनों देशों में बैलों से काम नहीं लिया जाता, बल्कि लोग उन्हें खा जाते हैं, हाँ, वे गऊ के पालने में बड़े होशियार हैं और दूध मक्खन की भारी तिजारत करते हैं।

संसार के सबसे बड़े खेती करनेवाले देशों में जो बातें हम देखते हैं उनमें सीखने की बातें लोहे की मशीनें नहीं हैं बल्कि मनुष्यों के संगठन और प्रबन्ध हैं, जो हम भी कर सकते हैं अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हों।

'लोक साहित्य माला'

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य में सुलभ कर दिया जाय। हम नहीं कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है; लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर नेक नीयती से बढ़ते रहने की कोशिश की है और हिन्दी में राष्ट्रनिर्माणकारी और जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने में उसने अपना ख़ास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से संतोष नहीं है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादों को छोड़कर, ऐसा साहित्य नहीं निकला जो बिलकुल जन-साधारण का साहित्य—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतौर पर मध्यम श्रेणी के लोगों को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब हमको अनुभव हो रहा है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का ख़ास-तौर से आयोजन करना चाहिए।

इसी उपरोक्त विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला में डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सौ पृष्ठों की लगभग दो सौ पुस्तकें देने का हमारा विचार है। पुस्तकें साधारणतः जन-साधारण की समझ में आने लायक सरल भाषा में, अपने विषयों के सुयोग्य विद्वानों द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तकों के विषयों में जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयों—जैसे खेती, बाग़वानी,

ग्राम उद्योग, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्ति की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढ़ानेवाली कहानियाँ आदि का समावेश होगा। संक्षेप में हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तकों की एक ऐसी छोटी-सी लाइब्रेरी बना दें, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों के अन्दर वर्तमान काल के सारे विषयों को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारों को सरल-से-सरल भाषा में रख दे और उसके बाद उन्हें फिर किसी विषय की खोज में—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पड़े।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढाई सौ पृष्ठों की पुस्तक माला की पुस्तकों का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते हैं। आमतौर पर हिन्दी में उतने पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला के स्थायी ग्राहकों के लिए छः आना और फुटकर ग्राहकों के लिए आठ आना रखना चाहते हैं। कागज छपाई आदि बहुत बढ़िया होगी।

निम्नलिखित पुस्तकें इस माला में प्रकाशित हो चुकी हैं और कुछ तैयार हो रही हैं।

१. हमारे गाँवों की कहानी [स्व० रामदास गौड़]
२. महाभारत के पात्र—१ [आचार्य नानाभाई]
३. संतवाणी [वियोगी हरि]
४. अंग्रेज़ी राज में हमारी दशा [डॉ० अहमद]
५. लोक-जीवन [काका कालेलकर]
६. राजनीति प्रवेशिका [हेरल्ड लास्की]
७. हमारे अधिकार और कर्तव्य [कृष्णचन्द्र विद्यालंकार]
८. सुगम चिकित्सा [चतुरसेन वैद्य]
९. महाभारत के पात्र—२ [नानाभाई]

गांधी साहित्य-माला

'मण्डल' का यह सौभाग्य रहा है कि महात्माजी की पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित करने की स्वीकृति और सुविधा महात्माजी की ओर से उसे मिली है। और हिन्दी में गांधीजी की पुस्तकें मण्डल ने ही ज्यादा संख्या में निकाली भी हैं। 'मण्डल' का सर्वप्रथम प्रकाशन महात्माजी का लिखा 'दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह' था। उसके बाद उनकी 'आत्मकथा', 'अनासक्तियोग-गीताबोध', 'अनीति की राह पर' और 'हमारा कलंक' आदि हमने प्रकाशित किये। लेकिन फिर भी अबतक हम एक बात नहीं कर पाये। बहुत दिनों से हमारी इच्छा थी कि महात्माजी के सारे लेखों और भाषणों का विषय-वार सुसंपादित संस्करण निकाला जाय। अब पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस वर्ष हम इश काम को प्रधान रूप से हाथ में ले रहे हैं और महात्माजी के चुने हुए ख़ास-ख़ास लेखों को १५-२० भागों में उपरोक्त माला के रूप में निकाल रहे हैं। 'स्वदेशी और ग्रामोद्योग' इस माला की पहली पुस्तक है। इस माला के प्रत्येक भाग की पृष्ठ संख्या २०० और दाम ॥) होगा।

नवजीवन माला

मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार सन् १९३०-३१ में कलकत्ता में 'शुद्ध खादी भण्डार' संचालन का काम करते थे। वहाँ से उन्होंने 'नवजीवन माला' नाम की एक पुस्तकमाला निकाली थी। उसका उद्देश्य, करोड़ों, हिन्दी भाषी ग़रीब लोगों में महात्मा गांधी और संसार के दूसरे सत्पुरुषों के नवजीवनदायी विचारों को सस्ते-से

सस्ते मूल्य में फैलाना और उनको भारत की आज़ादी के महायज्ञ के लिए तैयार करना था। इस माला में कलकत्ते से लग-भग ३० छोटी छोटी पुस्तकें निकली थीं। उसका बड़ा प्रचार हुआ और महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री जमनालाल बजाज आदि ने इन पुस्तकों की बहुत प्रशंसा की। बाद में श्री पोद्दारजी दूसरे कामों में लग गये और माला का प्रकाशन बन्द होगया। अब श्री पोद्दारजी ने इस माला का प्रकाशन 'सस्ता साहित्य मण्डल' के सिपुर्द कर दिया है और यह माला, पुरानी पुस्तकों के क्रम में कुछ हेर-फेर के साथ, मण्डल से नियमित रूप में प्रकाशित होती रहेगी। इसकी पुरानी पुस्तकें जो प्राप्य होंगी वे भी मण्डल से मिल सकेंगी।

'मण्डल' से इस माला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं, उनका क्रम तथा परिचय इस प्रकार है:—

१. गीताबोध	(गांधीजी)	~)॥।
२. मंगलप्रभात	,,	~)॥
३. अनासक्तियोग (गांधीजी) =) : श्लोकसहित ≡) सजिल्द ।)		
४. सर्वोदय	(गांधीजी)	~)
५. नवयुवकों से दो बातें	(क्रोपाटकिन)	~)
६. हिन्द स्वराज्य	(गांधीजी)	≡)
७. छूतछात की माया	(आनन्द कौसल्यायन)	~)
८. किसानों का सवाल	(डा० अहमद)	=)
९. ग्राम सेवा	(गांधीजी)	~)
१०. खादी गादी की लड़ाई	(विनोबा)	=)